वर्ष ८, अंक ७

श्रीकृष्णाय नमः

चैत्र पूर्णिमा १९९०

वार्षिक चन्दा ३)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

सं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	... .	१९३
२.	योग-साधन [ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती	... ...	१९४
३.	विस्मरण [ले० श्री बी० एल० सराफ बी० ए०, एल एल बी०	... ...	१९८
४.	चित्रकूल [ले० श्री मधुसूदन मिश्र जी बी० ए	... ...	२०१
५.	दरिद्रता मानसिक कमजोरी है [ले० श्री नृनक्षणदास जी	... ...	२०३
६.	शिव (कविता) [सर्वश्री श्रीमती बालकुमारी जी प्रभाकर	... ...	२०७
७.	ईश्वर भक्ति [ले० श्री भरतराम जी	... ...	२०७
८.	पुराणगाथा [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी	... ...	२०९
९.	अद्वैतामृत	... ...	२१३
१०.	गोपाल की झाँकी (कविता) [ले० दीवान श्री बलदेव प्रसाद जी बी. ए.	... ...	२१६
११.	गोपियों का अनन्य श्री कृष्ण प्रेम [ले० श्री विश्वमूर्ति जी	... ...	२१७
१२.	शरणागति [ले० श्री शर्मा जी भारद्वाज	... ...	२२०
१३.	हरिनाम की महिमा [ले० श्री महात्मा राम	... ...	२२२
१४.	(गजल) [श्री० शिवराम जी शर्मा	... ...	२२४
१५.	भजन	... ...	२२४

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और इसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२५)
ला० गोपालदास जी रईस लाहौर	१२१)
धर्म सिंह भावजी जेठवा कोलरी प्रोप्राइटर झरिया	१११)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग बज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१२०)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१,
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा	१०१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	५१)
डाक्टर भंवरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	५२)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	१५)
जमादार दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)
	५)

बकासुर-उद्धार

तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां पतिः।
पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो घोरणवद्द्विबौकसाम्॥

GITA PRESS, GORAKHPUR

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, चैत्र पूर्णिमा, मार्च १९३४ | अंक ७ पूर्ण संख्या ९१

वेदोपदेश

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ १॥

विचित्र तेजः पुञ्ज तथा मित्र, वरुण और अग्नि के चक्षु स्वरूप सूर्य उदित हुये हैं। उन्होंने द्यावा पृथिवी और अन्तरिक्ष को अपनी किरणों से परिपूर्ण किया है। सूर्य जंगल और स्थावर दोनों की आत्मा हैं॥ १॥

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्॥ २॥

जैसे पुरुष स्त्री का अनुगमन करता है वैसे ही सूर्य भी दीप्तिमती उषा के पीछे पीछे आते हैं।

इसी समय दैवाभिलाषी मनुष्य बहु युग प्रचलित यज्ञ कर्म का विस्तार करते हैं। सुफल के लिये कल्याण कर्म को सम्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावा पृथिवी यन्ति सद्यः ॥ ३ ॥

सूर्य के कल्याण स्वरूप हरि नाम के विचित्र घोड़े इस पथ से जाते हैं। वे सब के स्तुति भाजन हैं। हम उनको नमस्कार करते हैं। वे आकाश के पृष्ठ देश में उपस्थित हुये हैं। वे घोड़े तुरन्त ही द्यावा पृथिवी चारों दिशाओं का परिभ्रमण कर डालते हैं ॥ ३ ॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ४ ॥

मित्र और वरुण को देखने के लिये आकाश के बीच सूर्य अपना ज्योतिर्मय रूप प्रकाशित करते हैं। सूर्य के हरिनाम के घोड़े एक ओर अपना अनन्त दीप्तिमान् बल धारण करते हैं। दूसरी ओर कृष्ण वर्ण अन्धकार करते हैं ॥ ४ ॥

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

सूर्य किरणों सूर्योदय होने पर आज हमें पाप से छुड़ाओ। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को पूजित करें ॥ ५ ॥

योग-साधन

(ले० श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती)

७३१. चार बातों को याद रक्खो-सत-विचार सत-वचन, सत-कर्म्म और सत्संग। इन चार साधनों को नियम पूर्वक काम में लाओ। इनमें अपनी धारणा को दृढ़ करलो। इस अभ्यास से तुम आत्मा का साक्षात्कार करने में समर्थ हो जाओगे। तुम्हारे जीवन के उद्देश की पूर्ति हो जावेगी। तुम को अनन्त आत्मा तथा परं पद की प्राप्ति हो जावेगी। लम्बी चौड़ी बातें करने से कुछ लाभ नहीं अभ्यास की आवश्यकता है। हजारों मत सिद्धान्त, और वाद विवाद से एक चुटकी भर अभ्यास अधिक श्रेष्ठ है। वेदान्त के व्याख्यानों से कुछ लाभ प्राप्त नहीं हो सकता।

७७२. एक सिक्ख दूसरे सिक्ख से मिलता है तो वह उसको प्रणाम करते समय कहता है सत-नाम, एक ओंकार। इसका अर्थ यह है कि परमात्मा का नाम सत्य है। परमात्मा एक है उसको किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है। जब मनुष्य मृतक को दाह क्रिया के लिए ले जाते हैं तो कहते "राम नाम सत्य है" यद्यपि मनुष्य यह शब्द बार २ सुनते हैं परन्तु फिर भी परमात्मा को भूल जाते हैं। इस का कारण अविद्या, मोह, राग और काम है। परन्तु विवेकी और भक्त सदैव सावधान रहते हैं। वह उसको सदैव याद रखते हैं और अनन्त आनन्द और पर शान्ति को प्राप्त करते हैं।

७७३. यदि तुम अपनी आत्मा में प्रेम का विकाश करना चाहते हो तो स्वार्थ का सर्वदा त्याग कर दो।

७७४. एक बालक अपने खिलोने से खेलता है, कूदता है, गाता है, और प्रेम में नाचता है। वह दिल में भूख, प्यास, माता, पिता, भाई बहन सब को भूल जाता है इसी प्रकार वह ऋषि जिसने पूर्ण ब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है। 'मैं' और 'मेरा' अहमत्व और ममत्व सब को भूल कर परमात्मा के ध्यान में मग्न रह कर आनन्द भोगता है। इसलिए मेरे प्यारे साधु सन्तों आत्म ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानी बन जाओ। आत्मिक विषय वासनाओं का समूल नाश कर डालो और आध्यात्मिक क्षेत्र में ऊंचे जाने का प्रयत्न करो।

७७५. जिस समय तुम्हारा मित्र भोजन कर रहा है उस समय यदि तुम पाखाने का शब्द का नाम लो तो उसको उलटी आजावेगी इसी प्रकार जब तुम गरम पकोड़े का नाम लेते हो तो तुम्हारे मुंह में लार आजाती है। प्रत्येक शब्द में शक्ति होती है। जब साधारण शब्दों की यह बात है तो परमात्मा के नाम का क्या कहना है? हरि, राम कृष्ण, शिव इन नामों को जिह्वा से उच्चारण करने और इनका चिन्तन करने से मनुष्य के मन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। यह चित्त की प्रकृति को बदल देता है, चित्त के पुराने बुरे संस्कारों को नितान्त पलट देता है और आसुरी दुष्ट स्वभाव को दूर भगा देता है और जिज्ञासु को परमात्मा के समक्ष कर देता है। ओ संशय वादी, विज्ञान वेत्ताओ, नास्तिको, जागो अपनी आखें खोलो। सदैव उसका नाम उच्चारण करो। गाओ और कीर्तन करो॥

७७६. काले सांप को दूध पिलाने से जहर की ही प्राप्ति होगी। गौ को थोड़ी घास खिलाओ वह तुमको स्वादिष्ट रस पीने के लिए देगी। ईख की खेती की सावधानी से रक्षा करो वह तुमको स्वादिष्ट रस पीने के लिए देगी। इसी प्रकार जब तुम्हारा व्यवहार सात्विक आदमी से होगा तो तुम सात्विक बन जाओगे। जब तामसी आदमी के साथ व्यवहार करो तो बाहर से भय दिखाओ परन्तु चित्त में शान्त रहो और उसको कुछ हानि मत पहुंचाओ। यदि ऐसा नहीं करोगे तो इस संसार में व्यवहार का चलाना बड़ा कठिन हो जावेगा। चतुर बनो परन्तु धोखा बाजी और कूट नीति से सर्वथा दूर रहो।

७७७. केवल गुरु के निकट रहने से शिष्य के मानसिक भाव में बहुत उन्नति होती है। जिज्ञासु को गुरु के सानिध्य में रहने से उसके आकर्षण से और उसके आध्यात्मिक स्वभाव से बहुत लाभ होता है। उनके तेजो मण्डल से उसको अत्यन्त लाभ होता है।

७७८. जिस प्रकार कोई पुरुष भ्रम से बालु में जल की तलाश करता है इसी प्रकार अज्ञानी

पुरुष संसार के विषय वासनाओं में आनन्द की तलाश करता है। स्त्री, धन, शक्ति नाम और कीर्ति सब दुःख के कारण हैं। सच्चा आनन्द तो आत्मा में है, भगवान् कृष्ण के चरणों में है जो कि सब के अन्तर्यामी और मनुष्यों के मनों में विराजमान हैं। प्यारे कुञ्ज बिहारी, श्रीकृष्ण मुरारी उसको अपने हृदय वृन्दावन में तलाश करो और अन्तर में लखो। तुम्हारी अन्तर गुहा में विलक्षण रास लीला हो रही है।

७८९. उन मनुष्यों के हृदय में जो तीन प्रकार के तप करते हैं आनन्द देने वाला अमृत से भरा हुआ ब्रह्मरूपी समुद्र लहरें मार रहा है। वह तप श्रवण, मनन, निदिध्यासन हैं परन्तु इन तपों के करने की पूर्ण लग्न होनी आवश्यक है जैसी लगन मन्सूर और शमसतबरेज़ को थी।

७९०. सर दाम, नमूनिया, बाय गोला की दर्द आध्यात्मिक ताप हैं। भूकम्प, उल्कापात, और ओलों का पड़ना आधि दैविक ताप हैं। बिच्छू या सर्प का काटना, सिंहादि जानवरों से भय भीत होना आदि आदिभौतिक ताप हैं।

७९१. सत् चित् आनन्द तुम्हारा स्वभाव है। यह प्रयत्न द्वारा प्राप्त करने की बात नहीं है। अविद्या का जो परदा तुमने स्वयं भी धारण कर रक्खा है उसको दूर कर डालो और अनुभव करो कि तुम ही वह आत्मा हो। उन लोगों के लिए जो सच्ची लग्न वाले हैं और जिनको तीव्र वैराग है उनके लिए अध्यात्मिक मार्ग बहुत सरल है।

७९२. इस विविध संसार में अनेक प्रकार की व्याधियों के रहते हुए जैसे भूकम्प, संक्रामक बीमारियां और आकस्मिक घटनाएं हैं यह हमारा शरीर बना हुआ है इसका कारण यही है कि यह प्रारब्ध से सुरक्षित रहता है।

७९३. ओ जिज्ञासुओ! जब तुम आसन पर बैठो और ध्यान लगाना चाहो तो पहले ६ बार ज़ोर से ओ३म् का उच्चारण करो। इससे विक्षेप दूर हो जावेगा और समस्त प्रकार के संसारी विचार दूर हो जावेंगे। अपने मन में गुरु स्तोत्र का जप करो फिर ध्यान लगाओ॥

७९४. शीर्षासन का अभ्यास आरम्भ करने से पहले आधा या एक मिनट अभ्यास करो और पावों को नीचे करलो। इसी प्रकार तीन या चार बार अभ्यास करो। इस प्रकार अभ्यास करने से ५ या १० मिनट तक गति हो जावेगी।

७९५. मुमुक्षुओं को जो कि मोक्ष की अभिलाषा रखते हैं अपने चित्त के सब प्रकार के विकारों को शुद्ध करना चाहिए। यह विकार यम, नियम, यज्ञ, तप, जप, दम, शम और दान द्वारा दूर हो सकते हैं।

७९६. जिनके चित्त में काम वासना नहीं है और संयम है और जिनको श्रुति के अध्ययन में प्रेम है ऐसे लोग ज्ञान यज्ञ के अभ्यास के अधिकारी हैं।

७९७. जिस काम के करने में तुमको लज्जा शंका, भय होता है उस काम को अनुचित समझना चाहिए। यही अच्छे, बुरे कर्म की कसौटी है ऐसे कर्मों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। अहंकार तुमको विजय करने का प्रयत्न करेगा परन्तु तुमको सावधान रहना चाहिए। अपने अन्तःकरण से सलाह करनी चाहिए। अन्तरात्मा की आवाज़ सुननी चाहिए।

७९८. वह महात्मा जो हिमालय की एकान्त गुफा में ध्यानावस्थित है, अपने शुभ विचारों की धाराओं से उस साधु की अपेक्षा जो प्लेट फार्म से उपदेश करता है अधिक लाभ पहुंचाता

है। जिस प्रकार शब्द कम्पन वायु द्वारा गति करता है इसी प्रकार आध्यात्मिक कम्पन उससे भी अधिक दूरी तक गति करके हजारों मील तक शांति और शक्ति प्रदान करने में समर्थ होता है। जब ध्यान करने वाला चित्त शून्य हो जाता है तो वह समस्त जगत् में विस्तृत और व्यापक होने की शक्ति रखता है। अज्ञानी पुरुष ऐसा कहते हैं कि समाधि लगाने वाले साधु स्वार्थी होते हैं।

७८६. इस मायावी संसार में विषय भोग का जीवन कितना क्षणिक व तुच्छ है, और यह भोग भी स्वयं कितने क्षणिक व चंचल हैं. विचार करो कि कितने मनुष्यों का संसार इस विहार भूकम्प में हो गया? कितने घर नष्ट हो गए? यह अधिदैविक तप है परन्तु अब भी लोग शिमला और मसूरी में बंगले बनाना चाहते हैं और यह समझते हैं कि हम संसार में सदैव अमर रहेंगे। यह कैसे मूर्ख हैं? यह आत्म वंचना है। यह दया के पात्र हैं। मैं उनके लिए प्रार्थना करता हूं। यह पृथ्वी के कीट हैं यह सदैव गन्दगी में ही रहना पसन्द करते हैं। परमात्मा इनको वैराग, विवेक और भक्ति प्रदान करे।

७९०. संसार की उन्नति के लिए युद्ध का होना जरूरी है। संसार की शान्ति के लिए सब धर्मों की एक सभा का होना आवश्यक है। जब कभी कामवासना के अधिक होने से स्त्री पुरुषों में व्यभिचार अधिक होने लगता है और देश की जन संख्या बढ़ जाती है और खाद्य पदार्थों की कमी आजाती है तो दुर्गा, काली फालतू जन संख्या के संहार के लिए बीमारिए जैसे प्लेग, हैजा और अकाल लेकर आती है जिससे संसार शुद्ध हो जाता है।

७९१. यह बात याद रक्खो कि आत्मिक शक्ति तलवार और तोप की शक्ति से कहीं बढ़कर है इसलिए अध्यात्मिक उन्नति अवश्य करनी चाहिए उसके साधन हैं वैराग, तप, ध्यान, वासना त्याग और अहंकार को वश करना।

७९२. जब तुम सत, रज और तमोगुण का उल्लंघन कर जाओगे तो तुमको अजर, अमर आत्मा के अमृत पीने का अवसर मिलेगा और तुम वृद्धावस्था बीमारी, मृत्यु और शोक से मुक्त हो जाओगे। यही कारण है कि तुमको इसी जन्म में साक्षात्कार करनेका प्रयत्न करना चाहिए॥

७९३. यद्यपि काली माता का बाह्य रूप बड़ा भयानक है। उसकी लम्बी निकली हुई लाल जिह्वा, गले में मुण्डों की माला, लहू से भरा हुआ काला शरीर है परन्तु वह प्रेम और दया से परिपूर्ण है, नाश के पश्चात् ही पुनर्जीवन का निर्माण होता है। जीर्ण हुआ स्थूल शरीर विकास के योग्य नहीं रहता है तो वह इसका नाश करके नवीन शरीर दे देती है जो मजबूत, स्वस्थ और विशेष अध्यात्मिक उन्नति करने के योग्य होता है। वह बहुत दयालु है। "ओ३म्, क्लिं, काली, नमः" का उच्चारण करो और तुम उसकी दया के पात्र बन जाओगे और तुमको उसके दर्शन हो जावेंगे।

७९४. यह तीन गुण ही शरीर के कारण हैं। यह माया की उपाधी है। माया की समस्त लीला इन तीनों करके ही धारण की हुई है। यह बीज का काम देते हैं जिनसे शरीर का प्रादुर्भाव होता है। जो इन तीनों से परे चला जाता है वही मुक्त पुरुष हो जाता है।

७९५. यति संन्यासी को कहते हैं जो सचाई से आत्म साक्षात्कार करने में लगा हुआ है। मैं सर्वत्र और मनुष्यों में भगवान् का अनुभव करता हूं। मेरी दृष्टि कौन बदल गया है। तुम भी मेरी

भान्ति क्यों नहीं अनुभव करते ?

७९६. जिज्ञासु और मुमुक्षु दोनों एक ही हैं। जो मोक्ष की अभिलाषा रखता है वह जिज्ञासु है।

७९७. साधक उसको कहते हैं जो आध्यात्मिक साधन करता है। साधन आध्यात्मिक अभ्यास का नाम है। यह अभ्यास शान्ति, मोक्ष और अभ्युदय की प्राप्ति के लिए किया जाता है। अभ्यास और साधन एक ही हैं। सिद्ध वह है जिसका योग पूर्ण हो गया है।

७९८. आत्म ज्ञान के प्राप्त होने पर सब भेद भाव चित्त से मिट जाते हैं और मनुष्य तत्ववित बन जाता है।

७९९. वास्तव में न तो जन्म है और न मृत्यु है न बन्धन है और न मोक्ष है, न तो कोई साधक है न कोई जीवन्मुक्त है। यह सब मन की रचनाएं हैं। ज्ञान की अपेक्षा से यह कुछ भी नहीं है। यह तो जिज्ञासु को समझाने के लिए केवल व्यवहार मात्र के लिए प्रयोग में लाने की बातें हैं।

८००. नीच मनुष्य केवल वह है जो हरी का नाम सुमरण नहीं करता। जिस महल या बंगले में हरि का नाम नहीं लिया जाता और न कीर्तन किया जाता है वह श्मसान है चाहे उसमें कितना ही सुन्दर बाग़ हो, बिजली रोशनी, बिजली के पंखे और बढ़िया कुर्सियां हों॥

विस्मरण

(ले० श्री बी० एल० सराफ बी० ए०)

इस विस्तृत नीलिमा-शोभित आकाश मंडल के हृदय-पटल पर उस प्रातः काल में दर्शन देने वाली उषा के अप्रतिम वेग से, उड़ रहा हूं। शयन करते २ उड़ रहा हूं, बात चीत होते होते भी उड्डयन हो रहा है। किन्तु अन्त में कब तक ? यह उड्डयन एक वृक्ष से दूसरे पर दौड़ने वाले लक्ष्य हीन चंचल पक्षी का उड्डयन नहीं। उषा काल की ध्वनि इसमें नहीं। प्रातः कालीन उल्लास जनित अम्लानता इसमें नहीं। यह एक आकाशचारी हंस की विशद किन्तु विचारशील मंद और निश्चित उड्डान है। किन्तु बहुत दिन हो गये उड्डान एक स्वाभाविक क्रिया ही हो गई। उसका आनन्द लुप्त होता जाता है। न जाने कब तक उड़ने की आज्ञा जारी रहेगी।

पृथ्वी त्यागी पर इसलिये नहीं कि वहाँ मोह है, प्रलोभन है, बाधायें हैं और बाधाओं से भागना ही सच्चा मार्ग है। यह मैं अवश्य स्वीकार करूंगा कि तुझे देखने की धुन में पड़ कर उड़ना ही स्वीकृत किया और तेरे प्राणियों की सेवा की ओर ध्यान नहीं दिया। प्राणियों की क्या पत्नी पुत्र और कुटुम्ब की ओर से भी मुख मोड़ लिया। विरागी तो था किन्तु पीत वस्त्र पहन जंगलों की राख नहीं छानी। हठ योग और यात्रा भी कर सक्ता था किन्तु हाथ उठाये कब तक खड़ा रहूं, शारीरिक कष्ट सहन करते करते आत्मा किस तरह विरक्त हो सक्ती है। बिना ज्ञान के हठयोग से ही यदि आत्मा उन्नत होसके तब मस्तिष्क को उत्कृष्ट बनाने की और कर्म और अकर्म की ग्रन्थियां खोलने की आवश्यकता नहीं। विचार ही स्वर्ग बनादे और वही स्वर्ग को नर्क बनादे यही कारण था कि विचार साम्राज्य में ही आत्मा ने भ्रमण करने का निश्चय कर लिया और हठयोग को नमन कर लिया। यद्यपि हठयोग द्वारा भी ज्ञान प्राप्ति हो सक्ती है।

पर एक कारण और था शंख ध्वनि से तेरी

आज्ञा हुई "खुद को भूल जा और फिर मेरी खोज कर।" पर खुद को कैसे भूलूँ? स्वतः क्या वस्तु है? जिसे जाना नहीं उसे कैसे भूलूँ? जिस वस्तु का मनुष्य को ज्ञान नहीं उसे तो वह भूला ही है और किस तरह भुला जाता है? तुझे जानने के लिये पहले तो भूले हुए खुद को जानना पड़ेगा यदि खुद को नहीं जाना तो तुझे कौन जानेगा फिर खुद को कैसे भुला दूं? मानवी विस्मरण का साम्राज्य सार्व भौतिक है वह एक खास वस्तु के विस्मरण को ही ठीक नहीं समझता किन्तु एक वस्तु और स्वतः अपने ही बिसारने पर वह सब कुछ बिसार देता है। यदि उसे खुद का ध्यान है तो उसे उसकी कीर्ति विरदावली गाने वाले का भी ध्यान होगा, उसे उसके शत्रु का भी ध्यान होगा तथा और भी विविध बातों का स्मरण होगा वह विस्मृति में शयन नहीं कर सकता।

अपने विषय में तो केवल यह कह सकता हूँ कि मैं हूं। हां यह कहना अवश्य बहुत कठिन है कि मैं क्या हूं। पशु नहीं हूं उड़ रहा हूं पर पक्षी भी नहीं किन्तु मनुष्य भी प्रायः नहीं। अपनी चरण रज का एक कण ही समझले, विश्व में फैलने वाली तेरी ज्योति किरण का एक भाजन समझले। कुछ भी समझले जो मैं हूं वही समझले पर मैं कह नहीं सकता कि मैं क्या हूं। तुझे जानने के लिये तेरे आनन्द उदधि में मग्न होने के लिये ही, उदधि की लहरों को हृदय तक पहुंचाने के लिये ही यह सारा प्रयत्न मैं कर रहा हूं फिर खुद को भूल जाने को मत कह। ज्योति का जहां थोड़ा थोड़ा आविर्भाव हो रहा है वहां अन्धकार का साम्राज्य स्थापित हो जाने की आज्ञा देने से क्या लाभ? उषा की हंस मुख ज्योति आह्लादित हो उछलती हुई विश्व को हँस मुख करने के लिये जीवन में मनोरंजन और सार्थकता बताने के लिये, आ रही है उसके द्वारपालों ने घोषणा कर दी अब रजनी को क्यों फिर से लौट आने की आज्ञा दे रहा है? घोंसले में से पंख फैला कर विश्व युद्ध में सम्मलित होने और भाग्य की परीक्षा करने को बाहर निकले हुए पक्षी को पंख विहीन करके यह मत कह कि आंखें बन्द कर भीतर ही बैठ जा। उस उत्सुक और विह्वल आत्मा को स्फुरण की तृप्ति होने दे। जो अपने को पहचानने के प्रयत्न में ही संलग्न सा प्रतीत होता था और उसी ध्येय को लेकर बाहर आ दौड़ा था उसकी आंखें बन्द करा देना बहुत ही भयंकर अन्याय है। संस्कार और चिन्ताओं के सामाज्य में उसे गोते खाते छोड़ना उसकी धार्मिक मृत्यु करना है। विश्व की सारी वस्तुओं को भुलाने की आज्ञा हो तो भुला सकता हूं और उसके लिये प्रयत्न कर सकता हूं। क्योंकि इस समय तो मैं इस विशद आकाश मण्डल में विचर रहा हूं, पर खुद को भुलाने की क्या आवश्यकता?

किन्तु स्वतः को भुलाने के बाद यदि तेरा दर्शन भी हुआ तो तुझे देखेगा कौन? पर तू है कहां? ज्योति का आभास तो अन्धकार में भी छुपा है। मैं तुझे ढूंढूं कहां? सारा विश्व तो आलोक से भरा दीखता है। ऐसा कोई एक स्थान नहीं जहां तू न हो और जहां बैठ कर मैं तेरा पूर्ण दर्शन कर सकूँ। उपासकों को निर्विघ्न बैठ तुझे देखने को स्थान खाली क्यों नहीं रखा निष्पक्ष भाव से और पूर्ण रूप से तुझे आदमी कैसे देख सकते हैं! क्या मनुष्य की बुद्धि के पीछे ही यह भूल-भुलैयां बनाई है? जब कोई स्थान खाली ही नहीं जहां बैठ कर तेरा दर्शन हो सके तो मेरा उद्भवन निरर्थक ही गया क्या? मेरी अन्ध वासना ने ही मुझे दौड़ा दिया था। ऐसी आलोक भरे स्थान

में तेरा दर्शन अवश्य होगा क्या यह विश्वास प्रकृति का एक रम्य प्रलोभन मात्र था? अवश्य तभी तो पृथ्वी से आकाश ऐसा विशदपद प्रतीत होता था जैसी कि आकाश से यह पृथ्वी दीख रही है। रात्रि भी नीरवता में भी उस व्यापी विश्वाकाश में उड़ते हुये मुझे संसार सा सौम्य संगीत सुनाई पड़ रहा है। उसकी गति भी वैसी ही सौम्य, मन्द और मधुर प्रतीत होती है जैसी कि व्योम संगीत की। परन्तु पृथ्वी पर रहते हुए केवल व्योम संगीत ही क्यों सुनाई पड़ता था ससार संगीत क्यों नहीं सुनाई देता था।

पर अब इस संगीत के भीतर वह आर्तनाद और चीत्कार अवश्य सुनाई देगा तब फिर यदि मैं नीचे उतर जाऊँ तो ध्येय चिन्तन उस चीत्कार के बीच में से कैसा होगा? दुखित आत्माओं के आर्तनाद से परिवेष्टित यह दृश्य किस तरह स्थिर रहेगा। कुछ न कुछ पिछल ही जावेगा। तो फिर मैं किन किन की सेवा करूंगा और तेरे दर्शनोत्सुक नेत्रों को चिन्तन के लिये कब समय मिलेगा। कोई मार्ग नहीं दिखता यदि नीचे ही उतर जाऊं उत्पतन त्याग भी दूं तो भयंकर यातनाओं के बीच से निकलने की कोई आशा नहीं दीखती। विश्व सच मुच एक पहेली है या बुद्धि का और ज्ञान का यही परीक्षा मार्ग है? उड्डयन के द्वारा तेरे दर्शनों को गया था। तेरे दर्शनों की तैयारी में स्वतः के पहिचान की भी तैयारी हो रही थी, पर आज्ञा हुई अपने को भूलने की। यदि स्वतः को भूल भी जाऊं तो तेरे आगमन का स्वागत वाद्य जब बजेगा और प्राणी संसार की तंत्री भी जब एक तान हो बजने लगेगी और अपने नेत्र से उस संगीत मय' के स्वर की एक तानता में लीन होने को चल पड़ूंगा तब मैं किसकी बाट जोहूंगा। मेरे हृदय में वह ध्वनि कैसे उठेगी? सुमुक्षित संसार का और स्वार्थी बाजार के व्यापारियों का हल्ला मेरी हृदय वीणा तक उस संगीत सन्देश को न ले जाने देगा। वह इस कर्कश आक्रोश में ही खो जावेगा। यदि कोई अवकाश पाकर मेरी हृदय तन्त्री बज उठी तब भी मैं यही देखूंगा कि वह औत्सुक्य भरे नेत्र लेकर विश्व वीणा की एकतानता के राग में लय कर देने को दौड़ेगी नहीं। जो खुद को नहीं पहचान सका जो खुद को भूला वह 'किसे पहचानेगा। उसमें दूसरे के विषय में विचार ही क्यों कर आने लगे। विस्मृत ही उसका संसार है।

पर यह संगीत माधुर्य कहां से, यह चारु स्वर कहां से, यह मृदुल शब्द कहां से, यह रस भरी वाणी कहां से सुना'। "निश्चिन्त हो कर सुनो।" क्या सुनूं आज्ञा हो! "बस सुनो!"

"जो सुना था वही सुनो। भूल जाओ बिलकुल भूल जाओ इस शक्ति और अस्तित्व के महोदधि में।" किसको? "तुझे खुद के अस्तित्व का गर्व है"? अस्तित्व का गर्व है? अस्तित्व है पर स्वतः का किसका है? उड्डयन पतन का मार्ग है क्योंकि उड्डयन के गर्भ में विश्राम वासना थकने के बाद छुपी हुई है। "उड्डयन और दौड़ मानव विचार के उथलापन और शिथिलता के परिचायक हैं। उड्डयन भी भला? तेरे औत्सुक्य भरे मुख पर उन खुदगर्ज-ग्रस्त प्राणियों के दुख की थोड़ी भी रेखा क्यों नहीं दीखती?"

'मेरे जीवों से तुझे इतनी घृणा क्यों है? तेरी चंचल वासना में स्वार्थोन्माद का भी यही कारण है। उनके साथ रहने पर तुझे फिर खुद को जानने की इच्छा भी न होगी। मुझे देखने का उन्माद भी न रहेगा। खुद भूल जाने का भय भी न रहेगा फिर मैं तुझे दीख सकूँगा। पर तब तुझमें दूर न रहूंगा ऊपर आने और अशान्त उड्डयन करने की भी आवश्यकता न रहेगी; तू चेष्टाओं से विरक्त हो जावेगा। आनन्द दर्शन की वांछा और उससे पैदा हुआ उत्साह भी शान्त हो जावेगा। तुझे घर बैठे ही, बिना खास इच्छा किये ही मैं मिल जाऊंगा। अधीर क्यों है? बस निश्चय कर और भूलजा।

चित्रकूट

(ले० श्री मधुमंगल जी मिश्र बी० ए)

गतांक से आगे ।

अमर नाग किन्नर दिग् पाला ।
चित्रकूट आये तेहि काला ॥
चित्रकूट रघुनन्दन छाये ।
समाचार सुनि सुनि मुनि आये ॥
आवत देखि मुदित मुनि बृंदा ।
कीन्ह दण्डवत रघुकुल चन्दा ॥
यह सुधि कोल किरातन्ह पाई ।
हर्षे जनु नवनिधि घर आई ॥
कन्द मूल फल भरि भरि दोना ।
चले रंक जनु लूटन सोना ॥
करहिं जुहार भेंट धरि आगे ।
प्रभुहिं विलोकत अति अनुरागे ॥
बन बेहद गिरि कन्दर खोहा ।
सब हमारा प्रभु पग पग जोहा ॥
अहँ तहँ तुमहिं अहेर खेलाउब ।
सर निर्झर जल ठाउँ देखाउब ॥
बेद बचन मुनिमन अगम ते प्रभु करुण ऐन ।
बचन किरातन के सुनत जिमि पितु बालक बैन ॥
रामहिं केवल प्रेम पियारा ।
जानि लेउ जो जाननि हारा ॥

कोटि तीर्थ से पर्वतों ही पर प्रायः एक मील चलने पर एक निर्झर तट पर किसी तपस्विनी देवाङ्गना का स्थान है। आगे विस्तृत खुले पर्वतों पर प्रायः डेढ कोस चलने पर सीता रसोई और कुछ नीचे उतर के हनुमान धारा नामक झरना मिलता है। यहां जल स्राव सुनते हैं बारहों मास होता रहता है। यहां की रम्यता तथा हरियाली बहुत मनो मोहक है। बहुधा लोग यहां आके भोजन विश्राम करते हैं। प्रायः तीन सौ सीढ़ियाँ उतर के तीन मील चलने पर चित्रकूट फिर मिलता है।

चित्रकूट में मन्दाकिनी के उद्गम की ओर दो मील चलने पर एक स्थान जानकी कुण्ड नाम से प्रसिद्ध है। समीप ही कहीं यह होगा। परन्तु बहते जल की धारा को देख बन्धे जल का सूचक कुण्ड नाम पड़ने का कोई कारण समझ में नहीं आता। प्रायः एक कोस और बढ़ने पर नदी जल में प्रायः ६ फीट ऊंची (Igneous) आग्नेय पाषाण की एक शिला है जिसे फटिक शिला कहते हैं। यहीं पर जयन्त ने सीता को भक्षित किया था ऐसा कहते हैं। इस बन में काक अब नहीं पाये जाते ऐसा स्थानीय लोगों से सुन पड़ा मन्दाकिनी के दूसरे पार जलतट से उगे वृक्षों का आरण्य बड़ा मनोहर लगता है।

प्रायः ढाई कोस गहन बन के नदी नाले पार करने पर अत्रि मुनि का आश्रम मिलता है वह मन्दाकिनी तट पर स्थिर कोई २५० फीट दीवाल सी उठी पहाड़ी के एक संकीर्ण कोने पर है वहाँ एक मौनी साधु मिले। वे स्लेट पर लिख के उत्तर देते थे। उन्हीं से विदित हुआ कि यहीं महर्षि अत्रिका आश्रम था। उस निर्जन कानन में उनने जिज्ञासा की कि महात्मा गांधी का क्या हाल है। कोने २ में महात्मा जी का नाम पहुंचा है और अपनी संकुचित स्थिति से त्राण पाने को सारा भारत उत्सुक हो रहा है। डेढ सौ सीढ़ियां चढ़ने पर आश्रम मिला उसके ऊपर के पर्वत का रंग धूल वा जल के कारण काला न था। थोड़ी दूर पर अनसूया का मन्दिर था। इन्हीं अनसूया जी ने सीता माता को दिव्य वसन दे लोक हित की

कामना से पातिव्रत धर्म के उपदेश दिये थे। गोसाँई जी लिखते हैं:-

नदी पुनीत पुरान बखानी।
अत्रि तिया निज तप बल आनी॥

जल के परिमाण से लक्षित होता है मन्दाकिनी का उद्गम यहां से दो तीन कोस से समीप न होगा। वहाँ से २ कोस पर श्वापदा कीर्ण गहन वन में शरभंग मुनि का स्थान और पास ही विराध कुण्ड है। धर्मशाला के नीचे कल कल निनादित मन्दाकिनी का अनवरत प्रवाह सुन पड़ता था। साधुओं ने शीत ऋतु में भी सायङ्काल को स्नान कर धूनी पर लेट गोसाईं जी के पद्यों का उच्च संगीत स्वर से पाठ कर उस शून्य पर्वत वेष्टित वनस्थली की शान्ति को भंग किया। धर्मशाला में किवाड़ न थे। अतः अगत्या हिंस्र जन्तु तथा दस्युओं से आशङ्कित होते भी आगन्तुक यात्री और साधुओं के साथ रात कटी। उस संकीर्ण आश्रम में भगवच्चरण अवश्य पधारे थे।

परसि जासु पद पंकज धूरी।
तरी अहल्या कृत अघ भूरी॥
जे पद जनक सुता उर लाये।
कपट कुरंग संग धरि धाये॥
हर-उर-सर सरोज पद जेई।
अहोभाग्य जो देखइ सोई॥
जिन्ह पायन की पादुका भरत रहे मन लाय।
तिन पद अंकित भूमि पर अहो भाग सो जाय॥

पयस्विनी से संगम के उपरान्त मन्दाकिनी का नाम पैशुनी भी प्रचलित है। मन्दाकिनी तट को छोड़ गहन वन से निकल पथरा और पालदेव ग्राम होते चौबेपुर ग्राम में पहुंच विरल कानन होते ४ कोस पर पर्वत परम्परा के मध्य में विशाल गुफा के भीतर गुप्त गोदावरी का कलकल निनाद सुन पड़ता है। गुहा प्रायः ६ फीट लम्बी २५ फीट चौड़ी और प्रायः २ फीट जहाँ तहां ऊंची होगी। अन्धकार में प्रकाश का प्रबन्ध चौबेपुर से कर लेना होता है। वह जल एक कुण्ड में हो कर भीतर ही भीतर एक दूसरी कन्दरा में जाता है। उस कन्दरा में घुटने से कमर लौं गहिरा जल चल कर प्रायः ६० फीट पूर्व को, फिर दक्षिण ४० फीट चल के १० फीट पश्चिम को मुख करके जाना पड़ता है। अन्धेरे में शिर को ठोकर से बचाना होता है। गुप्त गोदावरी गुफा में अनसूया की बहिन के दर्शन कराते हैं। यहीं एक मुगदल सा लटकता पत्थर दिखाया जाता है जो छोटे छिद्र में से मोटे भाग के सहारे झूलता और बांस से हिलाया जा सकता है। भगवान् के ईधर आने का कोई उल्लेख यहाँ कर्णगोचर न हुआ। विशाल प्राकृतिक कन्दरा में अन्तर्हित जल स्रोत तथा मनोरम पर्वत ही यहां की विशेषता है। यहां से और चित्रकूट से भी ४ कोस पर भरत कूप है। यहां पर भरत जीने महर्षि अत्रि के बताये एक सिद्ध पावन स्थल में कूप खुदवाकर अभिषेकार्थ लाये तीर्थ जलों को प्रतिष्ठित किया था। कूप के समीप मन्दिर में सीता राम लक्ष्मण और भरत के दर्शन हैं।

शहर की पुलबंदी सड़कों तथा शीघ्रगामी यानों के सुभीते को छोड़ इन दुर्गम जंगली मार्गों से चलने के आयास तथा भोजनादि की वेला के अतिक्रमण तथा यात्रा के श्रम से खिन्न मन कहता था कि यथा शक्य सम्बल और व्यय पर यह दशा हो रही है। पर अन्तिम यात्रा में सम्बल वा साथी कोई न रहेगा परिचित भी काहे को मिलेगा। मार्ग भी न जाने कैसा मिलेगा। तब यात्रा कैसे

पार होगी ? दिन दिन प्राणी उठते चले जाते हैं। रेतीले नदी तट के वृक्ष के समान स्थिति प्राप्त होने पर भी भविष्य की ओर से असावधान बने ही हैं। महात्मा बूअलो सुवर्णाक्षरों में लिख गये हैं कि यात्री को सोने से खटका है अतः हमें सोना छोड़ सावधान होना चाहिये।

अब हौं नसानी अब न नसैहौं।
राम कृपा भव निसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं।
पायो नाम चारु चिन्तामणि उर कर ते न खसैहौं॥
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कञ्चनहिं कसैहौं।
परबस जानि हंस्यौ इन इन्द्रिन निज बस ह्वै न हसैहौं।
मन मधुकर पन करि तुलसी रघुपति पद पदुम बसैहौं।

दरिद्रता मानसिक कमजोरी है

[अनुवादक श्री० ला० मूलकरणदास जी]

दरिद्रता के सम्बन्ध में खराब चीज दरिद्रता का विचार है। हम निर्धन हैं और ऐसे ही रहेंगे यह विचार हमें दरिद्रस्थिती में रखता है।

मनुष्य में रही हुई दिव्य शक्ति का आशा जनक प्रोत्साहन इस मान्यता को खण्डन करता है। ब्रह्मा ने कभी भी ऐसा उद्देश्य नहीं रखा कि मनुष्य रंक, कंगाल और गुलाम बने। मनुष्य की अद्भुत रचना में ऐसा भासित कराने वाला एक भी चिन्ह नहीं कि उसको दरिद्र जीवन व्यतीत करने के लिये उत्पन्न किया गया है प्रभु की योजनायें उसके निर्वाह करने के वास्ते सदा दासता के कहीं अधिक विशाल तथा भव्य काम रखा हुवा होता है।

जो मनुष्य दारिद्रता से पीड़ित हो वह कभी भी अपने से हो सकने वाला उत्तमोत्तम कार्य्य नहीं कर सकता वह कभी भी अपनी उत्तमोत्तम शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता, जिस समय वह बाधित किया हुवा होता है, जिस समय वह अवरोधित हुवा हुवा होता है, जिस समय वह निरन्तर संकटमय स्थिति में हो उस समय वह अपनी उत्तमोत्तम शक्ति का उपयोग किस प्रकार कर सकता है।

अति रंक मनुष्य क्षुधा रूपी वरु को अपने आंगन से दूर रखने का प्रयत्न करने वाला मनुष्य स्वतन्त्र नहीं हो सकता। वह अपने जीवन को नियमित नहीं बना सकता।

प्रायः वह अपने सिद्धान्त प्रकट करता हुवा हिचकता है और बहुधा वह अपने स्वतन्त्र सिद्धांत धारण करके उसके अनुसार कार्य्य करने में असफल रहता है। उसको हमेशा अच्छी बस्तियों और आरोग्यदायक घरों में रहना ही नहीं मिलता।

निर्धनता दो प्रकार की है। एक तो अपने आलस्य अज्ञान इत्यादि अवगुणों के कारण प्राप्त हुई अनचाही निर्धनता और दूसरी असाधारण उच्च जीवन व्यतीत करने के हेतु योग्यता होते हुये भी धन वैभव में से आसक्ति त्याग कर स्वेच्छा से प्राप्त की हुई निर्धनता। इनमें से दूसरी प्रकार की निर्धनता निर्धनता ही नहीं है बल्कि बड़े से बड़े क्रोड पतियों को भी शरमाये इस प्रकार की असामान्य सबलता सधनता है कि जो दशा लिंकन, रामकृष्ण, विवेकानन्द, रामदास, गरफील्ड, गोखले, दादा भाई, रामतीर्थ इत्यादि जैसे अनेक पुरुष भोग कर जगद्वंद्य हो गये। और इस समय भी गांधी, मालवीय, जवाहरलाल इत्यादि अनेक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठ पुरुष यह दशा स्वेच्छा पूर्वक स्वीकार करके परोपकार मय असाधारण जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इस प्रकार की निर्धनता की

जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। परन्तु पहिली प्रकार की निर्धनता दरिद्री मनुष्यों के हृदयों को अवश्य ही बहुत संकुचित तथा क्षुद्र बना देती है। और उनकी महत्वाकांक्षाओं का नाश कर देती है। उनको अपनी उन्नति की कभी कोई आशा ही नहीं रहती, उनको कहीं कुछ भी आनन्द की प्राप्ति नहीं होती ऐसी निर्धनता प्रायः मनुष्यों में बुरे से बुरे दुर्गुणों को पैदा कर देती है।

ऐसी महा दरिद्र दशा में साधारण मनुष्य के लिये अच्छा आदमी बनना महा कठिन होता है। मनुष्य जिस समय संकट में हो, दुःख में हो, ऋण से घेरा हुवा हो, जिस समय उसे रुपये का काम केवल पैसे से ही चलाना पड़ता हो, उस समय उसके लिये उस स्वाभिमान तथा गौरव की रक्षा करना असम्भव हो जाता है कि जो स्वाभिमान तथा गौरव मनुष्य को अपना मस्तक ऊंचा रखने तथा संसार के सामने स्पष्ट दृष्टि से देखने की शक्ति प्रदान करता है। यह पहिली प्रकार की कंगाली जो दुराचारी जीवन व्यतीत करने, अव्यवस्थितता पूर्वक कार्य्य करने तथा प्रमाद और आलस्य के कारण उत्पन्न हुई है अवश्य ही धिक्कार के योग्य है। वह दरिद्रता जो स्वयं हमारे ही अवगुणों के कारण पैदा हुई है अवश्य ही हमारे लिये लज्जा जनक है कारण कि इससे हमारी निर्बलता प्रकट होती है और दूसरे लोग हमारे सम्बन्ध में अच्छे विचार धारण करने से रुकते हैं।

इस प्रकार की कंगाली के भोग बने हुये इस जमाने के अधिकतर मनुष्यों के सम्बन्ध में दुःख की बात यह है कि वह कंगाली में से मुक्त होने की शक्ति रखते हैं यह उनमें श्रद्धा ही नहीं रही। वह इस प्रकार की बातें सुनते हैं कि कंगाल मनुष्यों को अवसर ही नहीं मिलते; वह यह भी सुनते हैं कि भविष्य में बड़े २ श्रीमन्तों की बनी हुई पार्टियां गरीब आदमीयों को उनकी सेवा करने के लिये लाचार करेंगी वह पूँजी पतियों की खुराक और लोभी वृत्ति विषयक अनेक बातें सुनते हैं। इससे उनकी अवस्था पर काबू प्राप्त करने की अपनी शक्ति पर से श्रद्धा जाती रहती है और प्रायः हताश बन जाते हैं।

पूँजी पतियों ने जो निर्दय, कुचल डालने वाले लोभी कार्य्य किये हैं और अविचारी राज नीतिज्ञों और अर्थ शास्त्रियों ने अपनी योजनाओं द्वारा जो अनुचित तथा क्रूर अवस्थिति उत्पन्न की है वह मेरी दृष्टि से बाहर नहीं है परन्तु मैं गरीब कंगाल मनुष्यों को बताना चाहता हूं कि यह सब कुछ होते हुए भी गरीब आदमी अपनी संकुचित दशा में से उन्नत हो सकता है और उसके लिये आशा है। तुम जिस स्थिति को अपनी उन्नति में बाधक समझते हो उसी परिस्थिति में हर साल बहुत सारे आदमी उन्नति कर रहे हैं। इसीसे तुम्हें विश्वास हो जाना चाहिये कि तुम भी तुम्हारी परिस्थिति को जीत लेने की शक्ति रखते हो।

मनुष्य जब श्रद्धाहीन हो जाता है तभी सरलता प्राप्त करने वाले तथा इसी प्रकार के और तमाम सद्गुण उसमें से धीरे २ चले जाते हैं। और उसको उसका जीवन भी भार स्वरूप हो पड़ता है। वह महत्वाकांक्षा तथा चिपट कर काम करने की शक्ति खो बैठता है। अपने कामों में व्यवस्था तथा पद्धति का उपयोग करना छोड़ देता है तथा मेहनत से जी चुराया करता है और प्रत्येक विषय में शिथिल तथा निरुत्साही बन जाता है और कंगाली को जीत लेने की शक्ति दिन प्रतिदिन गवाता रहता है।

कंगाल लोग अपने श्रीमंत पड़ोसियों जैसा दिखावा और पद्धति रखने में अशक्त होने के कारण आप हताश हो जाते हैं। और अपने को जो कुछ पूगता ही तथा जैसी अपनी योग्यता हो उसका उत्तमोत्तम उपयोग करने के लिये अपने पूर्णबल से प्रयत्न नहीं करते। यदि कोई वस्तु अपनी शक्ति को संकुचित करने वाली है तो वह "स्व स्थिति को असाधारण समझ कर उससे छूटने का प्रयत्न करने के बदले उसी में संतोष मानना" ही है।

रंकता का विचार जितना बुरा है स्वयं रंकता उतनी बुरी नहीं है। हम रंक हैं और रंक ही रहेंगे यह दृढ़ मान्यता, भयंकर है। हमारी इस प्रकार की मनोवृत्ति ही हमारे नाश का कारण होती है। यह निराशा को उत्पन्न करती है और निराशा प्रयत्न तथा महत्वाकांक्षा की परम शत्रु है। जिस समय तक तुम अपने साथ चारों तरफ रंकता का वातावरण लिये २ फिरोगे तथा रंकता के विचार फैलाते रहोगे उस समय तक तुम संकुचित ही रहोगे। जो तुम दरिद्रता के ही विचार करोगे तो तुम भिखारी के अतिरिक्त और कुछ बन ही नहीं सकोगे। और जो तुम निष्फलता के विचार रखोगे तो तुम सदा सर्वदा निश्फल ही रहोगे।

जो तुम सदा कंगाली से भयभीत रहो, जो तुम दारिद्रता से डरते रहो, जो तुम्हें अपनी वृद्धावस्था में कंगाली का भय लगा रहता हो तो यह विशेष सम्भव है कि तुम बहुत शीघ्र रंकता को प्राप्त हो जाओगे। क्योंकि यह नित्य का भय तुम्हारी हिम्मत का नाश कर देगा। तुम्हारी आत्म श्रद्धा को डगमगा देगा और कठिन स्थिति काबू पाने की तुम्हारी शक्ति को जड़ बुनयाद से उखेड़ डालेगा।

लोह चुंबक अवश्य ही लोहे को आकर्षण करेगा इसी प्रकार मनुष्य जिस प्रकार के विचार करेगा उसी प्रकार की वस्तु को उसका मन आकर्षण करलेगा जो मनुष्य का मन भय तथा कंगाली के विचारों से भरा हुवा होगा तो अवश्य ही रंकता को अपनी ओर खींचेगा।

तुम जिस दिशा की तरफ देखते हो उसी तरफ तुम जाते भी हो इसी प्रकार जो तुम आग्रह पूर्वक रंकता ही को देखा करोगे तो तुम श्रीमंत बनो यह आशा रखनी व्यर्थ है जबकी तुम प्रत्येक कदम निष्फलता की तरफ रख रहे हो तो तुमको सफलता की आशा नहीं रखनी चाहिये। परन्तु जो हम अपनी आन्तरिक रंकता को जीत सके तो बाहर की रंकता तो बहुत थोड़े समय में जीती जा सकेगी। क्योंकि जब हमारी मनोवृत्ति बदल जाती है तब हमारी भौतिक स्थिति भी बदल कर मन की स्थिति के अनुकूल हो जाता है यह निश्चित है।

रंकता के विचार हमको दरिद्री तथा दारिद्र जनक स्थिति के समागम में रखते हैं निरंतर रंकता का विचार करने से, रंकता विषय वार्तालाप करने से, तथा कंगालियत का जीवन व्यतीत करने से हम अपने मन में रंक बन जाते हैं। यह सब से बुरी रंकता है।

जबलों हमारी मनोवृत्ति उन्नति की तरफ नहीं होती त्यों लों हम उन्नति की तरफ नहीं चल सकते। जब तक निराशा की तरफ देखते रहेंगे तब तक हम कभी भी आनन्द के समुद्र में गोते नहीं लगा सकते।

जो मनुष्य आग्रह पूर्वक अपनी मनोवृत्ति रंकता की तरफ रखता है वा जो हमेशा अपने

दुर्भाग्य और आगे बढ़ने की निष्फलता सम्बन्धी विचार करता रहता है तो वह कभी उसकी विरुद्ध दिशा में कि तहां उन्नति रहती है, जा नहीं सकता।

कंजूस संकुचित मन वाले मनुष्य द्रव्य का आकर्षण नहीं कर सकते, उनके पास जो द्रव्य होता है वह श्रीमन्तादि के नीयमानुसार आकर्षित किया हुवा नहीं बल्कि कंजूसाई से बचा हुवा होता है उनका संकुचित और कंजूस मन तो उलटा लक्ष्मी के प्रवाह को रोकता है। जिसका मन विशाल तथा उदार होता है वह द्रव्य का आकर्षण कर सकता है। आशामय उत्साही तथा आनन्दी मनोवृत्ति से ही सफलता प्राप्त हो सकती है आशावाद यही सफलता का जन्म दाता है निराशावाद यह सिद्धि का विध्वंसक है।

आशावाद में महान सर्व शक्ति रही हुई है। यह हमें चैतन्य तथा जीवन प्रदान करता है। यह हमारे मन को बलवान तथा आनन्दी बनाता है।

निराशावाद यह महान विध्वंसक है यह निरुत्साह तथा मृत्यु का पिता है। तुम्हारी सम्पत्ति चली गई हो, तुम्हारा आरोग्य नष्ट हो गया हो, तुम्हारी इज्जत जाती रही हो तो भी जो तुम अपने व्यक्तित्व में दृढ़ श्रद्धा रखोगे तो तुमको यह सब कुछ पुनः प्राप्त हो जायगा।

हम जिस वस्तु को प्राप्त करना चाहते हैं उसकी प्राप्ति का आधार हमारी मनोवृत्ति पर ही है। जो कोई मनुष्य समृद्धिशाली होना चाहता हो तो उसको ऐसी मान्यता धारण करनी चाहिये कि वह सफलता तथा सुख प्राप्त करने के लिये ही उत्पन्न हुवा है और उसमें ऐसी दिव्यशक्ति है कि जो उसे समृद्धि प्राप्त करा कर छोड़ेगी।

समस्त शंकायें, भय, रंकता तथा निष्फलता के विचार अपने मन में से दूर भगादो जब तुम, अपने विचारों पर काबू पालोगे तब ही तुम्हें समृद्धि प्राप्त हो जायगी तुम अपने समस्त बल से ऐसा निश्चय करो कि जगत में प्रत्येक मनुष्य के लिये पुष्कल श्रेष्ठ वस्तुयें भरी पड़ी है। और तुम दूसरे किसी की हानि किये बिना अपना हिस्सा मात्र ले रहे हो। तुम्हारे पास धन होना चाहिये तुम्हें पुष्कल सम्पत्ति प्राप्त होनी चाहिये ऐसा ईश्वर का उद्देश्य है। समृद्धि मिले यह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। तुम सफलता तथा सुख के लिये उत्पन्न हुये हो और तुम्हें अपना दिव्यध्येय प्राप्त करने का निश्चय करना चाहिये।

जिस समय तुम इस प्रकार का निश्चय कर लोगे कि तुमने कंगाली को सदा के लिये तिलांजली देदी है और अब तुम उसके साथ बिलकुल सम्बन्ध नहीं रखोगे तुम्हें अपनी पोशाक में से अपने देखन में से, अपनी रीति भांति में से, तुम्हारी वार्तालाप में से, तुम्हारे कृत्यों में से, तुम्हारे घर में से कंगालियत का प्रत्येक चिन्ह दूर कर देना चाहिये। और अब से आगे तुम अपने को एक सफल मनुष्य समझो तुम आग्रह पूर्वक अपनी दृष्टि अच्छी वस्तुओं, द्रव्य तथा स्वतंत्रता की तरफ रखो तथा तुम्हारा यह निश्चय इतना पक्का हो जायगा कि जगत कि कोई घटना तुम्हें इस निश्चय से डिगा न सके जब तुम देखोगे कि तुमको कितना उत्तेजक बल प्राप्त हो गया है कि जिसे देख कर तुम स्वयं चकित हो जाओगे। सदा यह सिद्धान्त स्मरण रखोकि।

"द्रव्य पहिले मन में पैदा होता है उसकी प्रत्यक्ष प्राप्ति होती है उससे पहिले उसका विचार उत्पन्न होता है। तुम संयोगों के दास नहीं वरण स्वामी हो।"

शिव

(ले० श्रीमती ब्रजकुमारी 'प्रभाकर')

मृग चर्म लिये कर दंड कमंडलु,
उपवीत कटी कौपीन लगाये ॥१॥
बाल बटु पटु वेश बन्यो,
रति रंगनि अंग विभूति रमाये ॥२॥
बौसुठि वेश बनाय उमापति,
मैन मनो विरहा सों छपे ॥३॥
हिम शैल जहाँ 'ब्रज' है रति रूप,
धरे तपसिन पै जाय सिधाये ॥४॥

ईश्वर भक्ति

(ले० श्री भरत राम जी)

ईश्वर क्या है ? हमें जन्म देने वाला, हमारा पालन करने वाला और हमारा नाश करने वाला ही ईश्वर है। सर्वव्यापक, निरंजन, स्वतंत्र, सर्वज्ञानी, सर्वशक्तिमान, सब पर दया करने वाला, सब का गुरु ही ईश्वर है।

इसी सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान परमेश्वर से प्रेम करने को भक्ति कहते हैं। यह प्रेम उतना ही दृढ़ और अचल होता है, जितना अज्ञानी को नश्वर पदार्थों से। भक्ति ईश्वर के लिये वह सच्ची खोज है, जो प्रेम में आरम्भ हो कर प्रेम में ही समाप्त होती है। भक्ति प्रेम का विज्ञान है।

ईश्वर को प्राप्त करने के उपायों में, यह सब से सुलभ और सहज उपाय है। तप, यज्ञ आदि उपायों में मनुष्य को अपने बल पर आश्रित रहना पड़ता है; परन्तु भक्ति में मनुष्य ईश्वर के भरोसे रहता है। तपस्वी दुर्वासा और भक्त अम्बरीष की कथा से कौन अपरिचित है! दुर्वासा चक्र से बचने के लिये भगवान सूर्य, शंकर और विष्णु तक के पास गये, पर किसी से कुछ सहायता न मिली। भगवान् विष्णु ने भक्त का पद तपस्वी से कहीं उत्तम माना है। यह उसी समय प्रत्यक्ष दिखा दिया था, जब उन्होंने कहा—"मुनि दुर्वासा! इस चक्र से आपको अम्बरी ही बचा सकता है। इस समय मुझ में भी इतनी शक्ति नहीं कि आपकी सहायता कर सकूं।" भक्ति कर्म और योग दोनों ही से श्रेष्ठ है। क्योंकि योग और कर्म दोनों में फल की आशा है। परन्तु भक्ति स्वयं ही अपना फल है।

भक्ति प्रेम अवश्य है परन्तु एक निराला प्रेम है। भक्ति प्रेम एक त्रिकोण के समान है। इस प्रेम के तीन गुण ही इस त्रिकोण की तीन रेखाएँ हैं। पहली गुण-रेखा है कि प्रेम का क्रय विक्रय नहीं हो सकता। जहां मनुष्य के हृदय में प्रेम के बदले कुछ लेने का भाव होगा, वहां सच्चा प्रेम नहीं हो सकता। जो प्राणी ईश्वर से प्रेम इसीलिये करते हैं कि वह उनके प्रेम के बदले उनकी इच्छायें पूर्ण करता है, निश्चय ही, यदि वह उनकी कामनाएँ पूरी न करे तो, वे उसे नहीं पूजेंगे; परन्तु सच्चे प्रेमी के हृदय में यह भाव नहीं आता। वह तो ईश्वर से इसलिये प्रेम करता है कि वह प्रेम करने के योग्य है। क्योंकि वह उससे प्रेम किये बिना रह ही नहीं सकता। जिस प्रकार हम एक सुन्दर दृश्य को देखते हैं, वह हमें बहुत अच्छा लगता है, परन्तु हम उससे कुछ लेने की इच्छा नहीं करते। उसी प्रकार भक्त, ईश्वर से कुछ लेने की इच्छा नहीं करता।

इस प्रेम-त्रिकोण की दूसरी गुण रेखा है

कि प्रेम को डर नहीं है। जो प्राणी ईश्वर के डर से उसकी आराधना करते हैं, वे अधम हैं। वह दण्ड के भय से उसकी पूजा करते हैं, प्रेम नहीं करते। उनके लिये परमेश्वर एक बहुत बड़ा और बलवान जीव है, जो एक हाथ में डण्डा और एक में कोड़ा लिये खड़ा है। वे डरते हैं कि यदि उन्होंने ईश्वर से प्रेम न किया तो ईश्वर उन्हें पीटेगा। जो प्रेम डर कर किया जाता है-यदि उसको प्रेम कहा जा सकता है-तो यह अधम प्रेम है। जब तक हृदय में डर है, तब तक सच्चा प्रेम हो ही नहीं सकता। एक स्त्री गली में खड़ी है, यदि कोई कुत्ता उसकी ओर भौंकने लगे तो वह भाग जायगी। परन्तु यदि उसकी गोद में उसका बालक हो तो चाहे सिंह भी आ जाय वह उससे लड़ेगी। भक्त प्रह्लाद के पिता ने उसे कितना डराया-कई बार उसकी जान लेने का यत्न किया; कभी उसे पर्वत से गिरवाया, कभी आग में जलवाया, कभी सांपों में छोड़ा और कभी विष दिया, परन्तु उसके प्रेम ने उसे निडर बना दिया था।

प्रेम-त्रिकोण की तीसरी गुण-रेखा है कि प्रेमी अपने प्रेम पात्र को छोड़ कर किसी को कुछ नहीं समझता। वह अपने प्रेम पात्र को ही अपना आदर्श मानता है।

जो भक्त न किसी स्वार्थ के लिये प्रेम करता है, न डर से करता है, और जो अपने प्रेम पात्र को ही अपना आदर्श मानता है वह ईश्वर से कहता है-"ले, मैं तुझे अपना सर्वस्व देता हूं, मैं तुझ से कुछ नहीं चाहता, मेरा कुछ नहीं है।" जब प्रेमी के ऐसे भाव होते हैं तब वह सर्वोत्तम भक्त हो जाता है। उसके लिये संसार में ईश्वर को छोड़ कर कुछ रहता ही नहीं।

जिस प्रकार एक मनुष्य अपने मित्र से अपने मन के सब भेद खोलता है और जानता है कि वह उसकी भूलों के लिये उसे ताने नहीं देगा, वरन् उसकी सहायता करेगा; जिस प्रकार उन दोनों में समानता का भाव है; जिस प्रकार उन दोनों में प्रेम है, वैसा ही प्रेम ईश्वर और उसके भक्त में है। ईश्वर अपने भक्तों के साथ खेलता है, हँसता है। जिस प्रकार बच्चे खेलते हैं, राजा महाराजा खेलते हैं, उसी प्रकार ईश्वर इस समस्त ब्रह्माण्ड से खेल रहा है। वह जब पृथ्वी बनाता है, तब खेलता है, चांद अथवा सूर्य बनाता है तब खेलता है, रात दिन से खेलता है, मनुष्यों से खेलता है, जानवरों से खेलता है, वृक्षों से खेलता है। हम सब उसके शतरंज के मोहरे हैं और भक्त ही उस शतरंज के राजा हैं।

भक्त ईश्वर को पा कर जितना प्रसन्न होता है, ईश्वर भी सच्चे भक्त को पाकर उतना ही होते हैं। ईश्वर भक्त पर जितना रीझते हैं, उतना किसी पर नहीं। कृष्ण-सुदामा की कथा से कौन अपरिचित है? कृष्ण भगवान् ने अपना स्वादिष्ट भोजन छोड़ कर भक्त सुदामा के तन्दुल खाये। भगवान् राम ने शबरी के प्रेम से सने हुए जूठे बेर तक खाये। भगवान् को सब भोजनों से स्वादिष्ट प्रेम-भोज लगता है। यदि भगवान् को कोई वश में कर सकता है तो भक्त, वे भक्त के आधीन हैं। कहा भी है:-

"भक्त के वश में हैं भगवान्"

जब किसी को ईश्वर से सच्ची भक्ति हो जाती है तब उसे मोक्ष, स्वाधीनता, निर्वाण किसी की भी इच्छा शेष नहीं रह जाती। सच्चा भक्त कहता है-"हे ईश्वर मुझे धन की, मित्रों की, विद्या की और स्वतंत्रता की भी इच्छा नहीं; मुझे ईश्वर बनने तक की इच्छा नहीं, क्योंकि मैं तो शक्कर

चखना चाहता हूं, शक्कर बनना नहीं।"

भक्त, प्रेम-नदी में बहाव के ऊपर चढ़ता जाता है। संसार उसे पागल कहता है, परन्तु वह गम्भीर भाव से कहता है-"भाइयो! यह समस्त संसार ही एक पागलखाना है, कोई सांसारिक प्रेम के लिये पागल है, कोई धन के लिये, कोई यश के लिये, कोई मोक्ष के लिये। इस पागलखाने में, मैं भी एक पागल हूं। और प्राणी धन, यशादि के लिये पागल हैं, मैं ईश्वर के लिये। पागल सब हैं पर मेरा पागलपन सब से उत्तम है। इसी पागलपन के आगे भक्त को कुछ नहीं दीखता।

पुराण गाथा

बाराहावतार

(ले० श्री स्वामी भीखे बाबा जी)

देवर्षि नारद के मुख से पुराण के लक्षण और पुराणों का माहात्म्य सुन कर शौनक जी ने प्रसन्न हो कर नारद जी से इस प्रकार प्रश्न किया-

शौनक-हे देवर्षे! हमने सुना है कि इस वर्तमान कल्प का नाम बाराहकल्प है, क्योंकि इस कल्प के आदि में जगदीश्वर नारायण ने बाराहरूप धारण करके हिरण्याक्ष नाम के दैत्य का वध करके इस पृथिवी को रसातल से लाकर अपनी शक्ति प्रदान करके जल के ऊपर स्थित किया था और ब्रह्मादिक देवताओं ने बराह भगवान् को जगत् का पिता और इस भूदेवी को जगज्जननी माना था। आजकल भी जो इन दोनों को जगतपिता और जगज्जननी मानता है, वह भूखा नंगा नहीं रहता, इस लोक में कीर्ति और परलोक में उत्तम गति पाता है। उन दोनों की कथा सुनने का महान् फल है, इसलिये हम सब आप से प्रार्थना करते हैं कि आप बराह भगवान् की उत्पत्ति की कथा सुनाने की कृपा कीजिये! हम सब आपके श्रीमुख से उनकी कथा के सुनने को बहुत ही उत्सुक हैं, उत्सक क्यों न हों, भगवान् के अद्भुत चरित्र ऐसे पावन हैं कि सुनने मात्र से श्रोताओं के अनेक जन्मों के पापों का नाश करने वाले हैं और पुरातन होते हुए भी जब सुनो तब नवीन ही प्रतीत होते हैं। ऐसे पुण्यकारी, अघहारी भगवच्चरित्रों को कौन नहीं सुनना चाहेगा! सिवाय मूढ़ पुरुष के सभी विद्वान् सुनने की इच्छा करेंगे।

शौनक के भक्ति भाव युक्त वचन सुन कर लोकहितेच्छु नारद जी प्रसन्न हो कर इस प्रकार भगवत्कथामृत की वर्षा करने लगे:-

नारद-हे ऋषियो! इस कल्प के आदि जगत्कर्ता मेरे पिता ब्रह्मा जी ने देव, ऋषि, दैत्य, दानव, तिर्यगादि अनेक प्रकार के स्थावर जंगम प्राणी उत्पन्न किये परन्तु स्वभाव से ही सृष्टि की वृद्धि होती हुई न देख कर उन्होंने अपने दाँयें अंग से स्वायंभव मनु को और बायें अंग से मनु की पत्नी शतरूपा को उत्पन्न किया, तब मनु जी इस प्रकार कहने लगे-

मनु-हे पिता! यद्यपि आप सर्व प्रकार से समर्थ हैं, अकेले ही सब कुछ कर सक्ते हैं फिर भी आप की सन्तान हमारा कर्तव्य है कि हम आप पिता की आज्ञा का शिर आंखों से पालन करें, इस लिये आप हमको आज्ञा दीजिये कि हम दोनों आप की क्या सेवा करें।

ब्रह्मा-हे पुत्र! तेरे विनय संयुक्त इन वचनों से मुझे बहुत ही संतोष हुआ है, पुत्र वही सुपुत्र

हैं, जो पिता की आज्ञा शिर पर धारण करले! जो मूढ़ पुत्र पिता की आज्ञा नहीं मानते और स्वतन्त्र वर्तना चाहते हैं, उनको इस लोक में सुख नहीं मिलता, परलोक में भी उत्तम गति प्राप्त नहीं होती यानी उनके दोनों लोक बिगड़ जाते हैं और जब दोनों लोक ही बिगड़ गये, तो परम पुरुषार्थ रूप मोक्ष तो उन्हें प्राप्त ही कहाँ से हो। तुम दोनों को मेरी यह ही आज्ञा है कि तुम दोनों धर्मविरुद्ध मैथुन धर्म से संतान की उत्पत्ति करो और धर्मानुसार प्रजा का पालन करो! जो राजा धर्मानुसार प्रजा की रक्षा नहीं करता, वह नरक में गिरता है और जो राजा पुत्र समान प्रजा का पालन करता है, वह इस देह के त्यागने के पीछे स्वर्ग में जा कर दिव्य भोग भोगता है।

नारद-हे ऋषियो! ब्रह्मा जी के ऐसे वचन सुन कर महर्लोक में स्थित मरीचि आदि और ऋषियों के सामने मनु जी ब्रह्मा जी से इस प्रकार कहने लगे-

मनु-हे पिता! जैसी आप की आज्ञा है, वैसा ही करने को हम दोनों तैयार हैं परन्तु हमारे और अन्य प्राणियों के रहने के लिये स्थान तो बताइये। हे देव! सब जीवों के रहने का स्थान पृथिवी तो महान् जल में डूबी हुई है, आप भूदेवी के निकालने का प्रयत्न कीजिये!

नारद-मनु के वचन सुन कर मेरे पिता ब्रह्मा जी इस प्रकार विचारने लगे-

ब्रह्मा-(मन में) मेरी उत्पन्न की हुई पृथिवी जल में डूब गयी है, रसातल में से पृथिवी के निकालने के लिये मुझे क्या करना चाहिये? जिस जगदीश्वर के हृदय में से मैं उत्पन्न हुआ हूं, वह ईश्वर ही मेरी सहायता करे, उसी की मैं शरण हूं।

नारद-हे ऋषियो! ब्रह्मा जी ऐसा विचार कर ही रहे थे, इतने ही में उनकी नासिका के छिद्र में से अंगुष्ठ परिमाण का एक वराह का बच्चा प्रकट हुआ और मरीचि आदि सहित ब्रह्मा जी के देखते २ हाथी के समान बड़ा हो गया। उसे देख कर वे सब आश्चर्य करने लगे और इस प्रकार विचारने लगे:-

ब्रह्मा-ओ हो! शूकर रूप में यह कौन जन्तु मेरी नाक में से निकला है और हम सब के देखते २ इतना बड़ा हो गया है, कहीं यह यज्ञ पुरुष भगवान् ही तो नहीं हैं।

नारद-हे ऋषियो! अपने पुत्रों सहित ब्रह्मा जी ऐसी तर्कनायें कर रहे थे, इतने ही में शूकर रूप भगवान् महान् गर्जना करके और अपनी गर्जना से ब्रह्मा जी को हर्षित करते हुए समुद्र में प्रवेश कर गये। उनके वेग से समुद्र क्षोभित होने लगा, सिंधुवासी जीव घबराने लगे! नाक से सूँघते हुए भगवान् रसातल में जा पहुंचे। वहां से जैसे गजेन्द्र कमलनी को उठा लेता है, इसी प्रकार पृथिवी को अपने दांतों पर रख कर ले आये और अपनी शक्ति प्रदान करके उसको जल पर ठहरा दिया। भगवान् को पृथिवी लाता हुआ देख कर हिरण्याक्ष दैत्य कुवचन कहता हुआ, उनके पीछे दौड़ा भगवान् ने उसके वचनों पर ध्यान दिया और पृथिवी को जल पर स्थापित करने के बाद गदायुद्ध में हिरण्याक्ष का वध करके उसको अपने धाम में भेज दिया। मरीचि आदि सहित ब्रह्मा पृथिवी का उद्धार हुआ देख कर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने भगवान् को जगत्पिता और पृथिवी को जगज्जननी मान कर उन दोनों का पूजन किया। पश्चात् उन सब ने यज्ञ पुरुष शूकर भगवान् की इस प्रकार स्तुति की:-

स्तुति-हे यज्ञ मूर्ति वराह भगवान्! आप के चरण वेद रूप हैं, आप की डाढ़ें यूप रूप हैं, आप के हाथ क्रतु रूप हैं, आप का मुख चिती रूप है, आप की जिह्वा अग्नि रूप है, आपके रोम दर्भ रूप हैं, आप का शिर ब्रह्म रूप है और आप महान तपस्वी हैं। आप दिव्य स्वरूप हैं, रात, और दिन आप के नेत्र हैं, छहों वेदाङ्ग आपके कर्ण भूषण हैं, घृत आपकी नासिका है, स्रुवा आप की थूथनी है और सामवेद आप का घोष है। आप महान् हैं, धर्ममय तथा सत्यमय हैं, श्रीसम्पन्न हैं, क्रम विक्रम रूप सात्विकताओं वाले हैं, प्रायश्चित्त रूप नखों वाले हैं, भयंकर हैं, पशु के घुटनों के समान घुटने वाले हैं, महान भुजाओं वाले हैं। उद्गाता आप की आतें हैं, होम जिह्वा है, सोम और ओषधि महान फल हैं, वायु अन्तरात्मा है, मन्थ त्वचा है और सोमरस रक्त है। आप विशेष क्रम (गति) वाले हैं, वेदी आप का स्कंध (कन्धा) है, हवि गन्ध है। आप हव्य कव्य रूप अत्यन्त वेग वाले हैं, प्राग्वंश (यजमानों के ठहरने का घर) रूप शरीर वाले हैं, बड़े तेजस्वी हैं, और नाना प्रकार की दीक्षाओं से अर्चित हैं। आप महा सत्रमय हैं, महायोगी हैं, दक्षिण रूप हृदय वाले हैं, उपाकर्म रूप होंठ और दांत वाले हैं और प्रवर्ग्य रूप आवर्त (रोम संस्थानों) से विभूषित हैं। नाना प्रकार के छन्द आप के आने जाने का मार्ग है, अति गुप्त उपनिषद् आप का आसन (बैठने का स्थान) है और ऊंचे शरीर वाले आप वराह भगवान अपनी छाया रूप पत्नी के सहित विराजमान हैं। योगी लोग ध्यान में आप का दर्शन करते हैं, कुयोगियों को ध्यान में भी आप का दर्शन नहीं हो सका, ऐसे आपको हम सब प्रत्यक्ष कर रहे हैं, यह हमारा अहोभाग्य है! आप यज्ञ पुरुष सूकर रूप धारी को हमारा बारम्बार नमस्कार है। हे देवों के देव! आप की माया से मोहित प्राणी आप के स्वरूप को नहीं जानते, आपके कृपा पात्र ही आप के स्वरूप को जानते हैं और जान सके हैं। हम सब आप से प्रार्थना करते हैं कि हम आप की माया से मोहित हो कर कर्म रूप कीचड़ में न फंसें किन्तु सर्वदा आप के चरण कमलों का ध्यान किया करें।

नारद-हे ऋषियो! भगवान् 'तथास्तु' कहकर सब के देखते २ अन्तर्धान हो गये। पश्चात् मनु शतरूपा ने सब प्रकार की प्रजा उत्पन्न की और प्रजा का पालन किया आज कल भी यह वराह रूप भगवान् उत्तर कुरु देशों में विराजमान हैं, यह भूदेवी वहां के वासी सिद्धेश्वरों सहित उनकी उपासना किया करती है। एक बार मैं उनके दर्शन करने को गया और मैंने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया:-

मैं-हे रमापते! मैं आप के श्रीमुख से ब्रह्म विद्या के स्वरूप, साधन और लक्षणों को सुनना चाहता हूं।

वराह भगवान्-हे देवर्षे! अपने २ वर्णाश्रम धर्म का निष्काम पालन करने से मनुष्य का अंतःकरण शुद्ध होता है, शुद्ध अन्तःकरण में नित्यानित्य विवेक, लोक परलोक में वैराग्य, शमादि षट् सम्पत्ति और मुमुक्षा साधन चतुष्टय उत्पन्न होते हैं, मोक्षाभिलाषी पुरुष को इन चारों साधनों का अभ्यास करना चाहिये, जितेन्द्रिय होकर स्त्री पुत्रादि की ममता और देह की अहंता त्याग कर मुझ साक्षी चैतन्य में अहंबुद्धि करनी चाहिये। यानी मैं देह नहीं हूं, देह के संबंधी मेरे नहीं है किंतु मैं साक्षी चैतन्य हूं, ऐसा अनुसंधान करना चाहिये, निरन्तर, प्रेम से, नियम पूर्वक अनुसंधान

करना चाहिये।

हे नारद! यह मनुष्य देह, मनुष्य देह में नर देह, नरदेह में भी ब्राह्मणत्व प्राप्त होना बहुत ही दुर्लभ है, अनेक जन्मों के पुण्य से प्राप्त होता है। इस सुदुर्लभ देह को प्राप्त करके भी जिसने श्रवणादि करके महाविष्णु को नहीं जाना, उसके मुक्त होने की कोई आशा नहीं है वह तो चौरासी चक्र में भटकता हुआ कष्ट ही पावेगा। हे ब्रह्मन! चराचर प्राणी सुख की खोज में हैं परन्तु प्रायः कोई सुखी नहीं हैं प्रत्युत सब दुःखी ही हैं इसका कारण यह है कि सब का आत्मा एक मैं ही सुख का रूप हूं। मेरे सिवाय कोई सुख स्वरूप नहीं है। मेरे लिये ही सब पदार्थ प्रिय हैं, स्वरूप से कोई पदार्थ प्रिय नहीं है। मुनीश्वर! मैं कभी न होऊं किन्तु सर्वदा ही होऊं ऐसा जो देखने वाला है, वह मैं विष्णु ही हूं, क्योंकि मैं परम प्रेम का आस्पद यानी स्थान हूं। मैं स्वयं प्रकाश हूं, इस जगत् के भाव और अभाव को मैं ही प्रकाशता हूं, मुझ स्वयं प्रकाश को न जानना, यह ही बंधन है और मुझ स्वयं प्रकाश को जानना मोक्ष है जो मुझ स्वयं प्रकाश निराधार को जानते हैं, वेही विज्ञान संपन्न हैं, इसमें संशय नहीं है।

हे नारद! मैं स्वपूर्ण आत्मा हूं, मुझ स्वपूर्ण आत्मा के सिवाय जगत्, जीव, ईश्वर आदि नहीं और न माया है, मैं इन सबसे विलक्षण यानी भिन्न प्रकार का हूं। अंधकार रूप अज्ञान और धर्माधर्म रूप कर्म मुझ स्वप्रकाश आत्मा को छू नहीं सके जो भाग्यवान् अधिकारी सर्व से रहित सबके साक्षी मुझ आत्मा को ब्रह्म रूप से देखता है, वह स्वयं ब्रह्म ही होजाता है। जो सुकृति जन सबके प्रकाशक मुझ आत्मा को वेदान्त के प्रमाणों से जान लेता है यानी साक्षात्कार करलेता है, वह शीघ्र ही जन्म मरण रूप संसार से मुक्त होकर मुझ को ही प्राप्त होजाता है।

हे ऋषे! 'मैं देह हूं' इस विपरीत ज्ञान का नाम अज्ञान है, 'मैं ब्रह्म हूं' इस सम्यक् ज्ञान का नाम ज्ञान है और यह ज्ञान 'मैं देह हूं' इस अज्ञान का बाधक है। अज्ञान का बाधक यह ज्ञान जिसको हो जाता है, वह इच्छा न करते हुए भी मुक्त हो जाता है जो पुरुष सत्य ज्ञान, आनन्द, परिपूर्ण, सम से पर ब्रह्मानन्द को अपना स्वरूप जानता है, वह कर्मों में कैसे बंध सक्ता है। नहीं बंध सक्ता। हे मुने! मैं तीनों लोकों का, तीनों अवस्थाओं का साक्षी हूं, सत्य हूं, ज्ञान हूं, आनन्द हूं, सबका आत्मा हूं, जैसे अंधा सर्वप्रकाशक सूर्य को नहीं देख सक्ता इसी प्रकार ज्ञान रूप नेत्र से हीन पुरुष मुझ सर्वव्यापक स्वयं प्रकाशक और सर्वप्रकाशक को नहीं देख सकता, ज्ञान रूप नेत्र वाला ही मुझको देख सकता है। इसलिये हे नारद! श्रेयोभिलाषी को चाहियेकि वेदान्त वाक्यों के द्वारा अपने अंतःकरण को संस्कृत यानी शुद्ध करके अपने हृदय में स्थित मेरा ही अनुसंधान करे ऐसा करने से अधिकारी को अपने हृदय में ही मेरा ज्ञान होजाता है और मेरा ज्ञान होते ही अधिकारी मुक्त होजाता है, फिर उसे न शोक होता है, न मोह होता है और न भय होता है किंतु वह निःशोक निर्मोह अजर अमर और निर्भय होजाता है।

नारद-हे ऋषियो! इस बारह भगवान् की कथा को जो पढता है। उसकी भगवान् में प्रीति होजाती है और प्रीति होने से वह सबसे प्रेम छोड़ कर भगवान् में ही प्रेम करता है और शीघ्र ही भगवान को प्राप्त होकर सर्वदा के लिये सुखी होजाता है।

पाठक! यदि आप संसारी कथायें छोड़कर

भगवान् की इस बारह कथा अथवा अन्य कथाओं को पढ़ेंगे तो निश्चय भगवान् आपको शान्ति प्रदान करेंगे। इसलिये।

कुं:—पढ़िये सादर चित्त दे, कथा बारह पवित्र।
तजिये सबसे अयुता देखो हरि सर्वत्र॥
देखो हरि सर्वत्र, रूप सब हरिके मानो।
नाम रूप दो छोड़, एक सच्चित शिव जानो॥
भोला! कहता वेद, ध्यान भगवत् का धरिये।
अधिये भगवन्नाम, कथा भगवत् की पढ़िये॥

अद्वैता मृत।

तीसरे अंक से आगे

जिस ज्योतिष्टव पर तुम आक्षेप करती हो वह क्या वस्तु है? ज्य तिष्टव यदि जाति रूप तुम्हें इष्ट है तो आत्मा में वह नहीं है क्योंकि आत्मा केवल एक है और सामान्य विशेष भाव से रहित है। शुक्ल रूपत्व और उष्ण स्पर्शत्व यदि तुम्हें इष्ट है तो वह भी प्रत्यगात्मा में असम्भव है। क्योंकि आत्मा को वेदान्तवादी रूप, स्पर्श, उदय और अस्त से रहित तथा अग्नि के समान काष्ट आदि दूसरे हेतु से न उत्पन्न होने वाला या न जलने वाला बताते हैं। यदि तेरा अभिप्राय है कि जो अपने आप प्रकाशमान हो और दूसरे को भी प्रकाशित करता हो वही ज्योति है तो इस प्रकार का ज्योति केवल आत्मा ही है, दूसरा नहीं। वही ज्योति का ज्योति है, उसी प्रकाशमान आत्मा के प्रकाश से यह सब जगत् प्रकाशित हो रहा है, उसी के प्रकाश से यह भास रहा है। जिस ज्ञान-मय आत्मा से यह सब जगत् प्रतीत हो रहा है उस आत्मा को किस साधन से जान सकते हैं? आत्मा को किससे जाने इत्यादि नाना श्रुतियां उक्त प्रकार से आत्मा के ज्योतिष्टव को अत्यन्त स्पष्ट करके कह रही हैं। यदि आत्मा स्वयं प्रकाश न हो तो वह जड़ ही होगा। और यदि आत्मा जड़ होता तो यह जगत् अन्धा होता यह युक्ति दूसरा प्रमाण है।

हे भद्रे! ब्रह्म शर्मा नामक कोई ब्राह्मण किसी नगर में वास करता था, सुमङ्गला नाम की उसकी धर्म पत्नी भी धर्म में आरूढ थी जिसका दर्शन भी मङ्गल हो था। पुत्र की कामना से कुछ उत्तम कर्म करते करते जब बुढ़ापा आया तब उनके एक अन्धा पुत्र उत्पन्न हुआ। वे उस अन्धे पुत्र को पाकर प्रसन्न और सन्तुष्ट चित्त हो गये और उसके पालन में तत्पर हो गये। इसी में उन दोनों का कुछ काल व्यतीत हो गया। उपनयन के पश्चात् यह बुद्धिमान् पुत्र अपने पिता से वेदाध्ययन करके उनके आग्रह से यथा शक्ति स्वधर्माचरण में प्रवृत्त हो गया। इस प्रकार जब वह सदाचार और ब्रह्मचारी व्रत में स्थित हुआ तब उसका बूढ़ा पिता उसके पास आया। वह प्रज्ञाचक्षु अन्धा पुत्र अपने पिता से बोला कि हे पिता! क्या आप जानते हैं कि मैं किस कर्म से अन्धा हुआ हूं इस प्रकार पूछे जाने पर पिता दुःखी हो कर बोला, हे तात्! प्रायः रत्न की चोरी करने से मनुष्य अन्धे होते हैं। पुत्र हंसता हुआ बोला, हे पिता। जन्मान्तर में किये कर्म को आप कारण क्यों बताते हैं, मैं इष्ट हेतु को ही बताता हूं। उपादान कारण में रहने वाले गुण अपने कार्य में अपने समान जाति वाले गुणों को उत्पन्न करते हैं। ऐसा लोग कहते हैं। क्योंकि श्वेत वस्तुओं से काला वस्त्र नहीं बनता। इसी प्रकार अन्धे पिता से मैं आंखों वाला कैसे

उत्पन्न होता । यदि आप ऐसा कहें कि हम अन्धे कैसे हैं तो मेरा वचन सुनिये। तत्व ज्ञान और निष्काम कर्म से ही मुक्ति होती है इसमें कोई भी संशय नहीं है। हे पिता! मुक्ति के देने वाली निष्काम कर्म रूप गोदावरी नदी को पा कर भी अपने विषय प्राप्ति की अभिलाषा करना ब्रह्मास्त्र से मच्छर को मारने के समान है। आपने स्नान अग्नि होत्रादि कर्म भी पुत्र कामना से ही किये हैं। क्या कुत्ता सूकर आदि कर्मी पुत्रों की कामना करते हैं? पुत्रों के लिये वे कौनसा धर्म करते हैं? क्षणिक सुख के लिये मैथुन धर्म को करते हुये मनुष्य तथा सूकरों को सन्तान की प्राप्ति आनुषङ्गिक ही है क्योंकि इस संसार में प्राणियों का जन्म माता पिता के अदृष्ट धर्माधर्म के कारण नहीं होता है। यदि ऐसा हो तो विष्टा के कृमि कैसे उत्पन्न हों? जहां जिसका जन्म होता है वह उसके स्वकर्मों के अनुसार ही होता है। उसके लिये माता पिताओं को क्लेश करना वृथा है। यदि किये गये धर्म ही इच्छित सन्तान के कारण हों तो मैथुन धर्म के अभाव में यह धर्म अपने फल को क्यों नहीं देते? जो वस्तु दृष्ट कर्म से सिद्ध हो सकती है उसकी सिद्धि के लिये जो अदृष्ट को कारण मानता है वह भोजन से होने वाली तृप्ति के लिये याग आदि कर्म करेगा। महात्मा लोग जिस आत्मज्ञान की इच्छा से उत्पन्न हुये पुत्रों को भी छोड़ देते हैं उस आत्म ज्ञान को त्याग कर आपने पुत्र की प्रार्थना क्यों की? पशु पक्षियों से विलक्षण मनुष्य जन्म को पा कर जिस पुरुष ने आत्म ज्योति को नहीं जाना वही अन्धा है। आंखों से रहित पुरुष अन्धा नहीं। अवश्य देखने योग्य आत्म ज्योति को छोड़ कर जो पुरुष पुत्र, मित्र, स्त्री आदि को देखता है उसे ही अन्धा कहते हैं। ब्रह्मज्ञान और निष्काम कर्मानुष्ठान यह दोनों आत्म साक्षात्कार के साधन हैं। ऐसा जान कर भी जो आत्मा को नहीं जानता वह अन्धे के समान है। बहुत कहने से क्या लाभ! जो पुरुष तत्व ज्ञानोपयोगी मानुष देह रूप गौतमी के तट पर पहुंच कर केवल इस लोक के पदार्थों में ही आसक्त रहता है वह निःसन्देह अन्धा ही है। हे पिता! इसलिये अन्धे से उत्पन्न होने के कारण मैं भी अन्धा हुवा हूं, क्यों कि पुत्र प्रायः पिता के ही समान होता है। परन्तु आपने पुण्यकर्मों द्वारा जो मेरी उत्पत्ति के लिये प्रार्थना की उसी के कारण मैं वस्तुतः अन्धा नहीं हूं किन्तु सर्व का द्रष्टा हूं। ये नेत्र सूर्य आदि पदार्थ किंचिन्मात्र रूपादि विषयों के प्रकाशन में ही प्रकाशमान चिदात्मा की सहायता करते हैं। अपने आप विषय को प्रकाशित नहीं करते। जैसे अन्धेरे में रक्खी हुई वस्तु को प्रकाशित करते हुये दीपक की तैल आदि सहायता करते हैं ऐसे ही सूर्य आदि पदार्थ रूपादि को जानने में चिदात्मा की सहायता करते हैं। सूर्य आदि अपने आप प्रकाशमान नहीं हैं किन्तु आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित हैं। यदि उनका प्रकाश स्वतः होता तो वे मुझ अन्धे को भी क्यों न दिखाई देते? जिस पुरुष की आंखें निर्मल हैं वह पुरुष उन आंखों द्वारा शब्दों से क्या लाभ उठा सकता है? क्या कमल लोचन कान से बहरा पुरुष कभी शब्द को सुन सकता है? अतः यह चिद्रूप ज्योति ही सब का नेत्र है, जिस पुरुष को चित्प्रकाश रूप आंख स्पष्ट स्फुरण हो रही है उसे अन्धा कैसे कह सकते हैं? जो मेरा अन्धापन है वह दुष्कर्मों के कारण नहीं है किन्तु चिदात्म स्वरूप श्रीराघव का अनुग्रह ही है। सोक्ष प्रतिबन्धक सब विक्षेप केवल नेत्रों के कारण होते हैं भगवान् ने नेत्र न देकर मुझ पर अपार अनुग्रह

किया है। सूर्य आदि ज्योतियों को प्रकाशित करने वाली सब से उत्तम आभ्यन्तर ज्योति को देखते २ मेरी चर्म दृष्टि नष्ट होकर किसी बाह्य पदार्थ को नहीं देखती है। इन स्त्री आदि को माया मात्र और आत्मा को शरीर से भिन्न समझते हुये पुरुष के लिये कौन सा कर्मानुष्ठानादि परिश्रम शेष रह जाता है? एकान्त में बैठ कर निर्मल ज्योति का निरन्तर चिन्तन करते हुये मुझे दिन और रात कहाँ! जो कुछ यह जगत है वह अन्धकार मय ही है। "मैं ब्रह्म हूँ" इस प्रकार के ज्ञान वाला मैं इस लोक में धन पुत्रादि की कामना नहीं रखता हूं। मोह की तो बात ही कैसी! भ्रम कहां तथा संसार समुद्र का भयंकर नाग भी कहां? चन्द्र सूर्य और अग्नि मेरे लिये दर्शनीय वस्तु नहीं हैं और दूसरे के उपदेश का लेश मात्र भी मुझे अपेक्षित नहीं है। इनके न होते हुये भी जो भीतर ज्योति है उसे मैं सदा चिन्तन करता हूं। हे पिता! अब मैं आपके हित की बात कहता हूं उसे सुनो। "मैं राम हूं" यह ज्ञान अहंकार के नाश का कारण है तथा संसार का दाहक है, ऐसा जान कर इस ज्ञान का अभ्यास आप क्यों नहीं करते? हे पिता! सुख रूप आत्मा की उपेक्षा करके विषय जन्य सुख के लिये क्यों क्लेशों को प्राप्त होते हो? गंगाजल में विद्यमान प्यासा पुरुष क्या हाथ के बनाये हुये कूवे के जल की इच्छा करता है? क्या तुम्हें सच्चिदात्मक आत्मा को पाकर विषय जन्य सुख की इच्छा करना उचित है? जो पुरुष घृत, खीर तथा खाण्ड से तृप्त हो रहा है उसे कांजी से क्या प्रयोजन है? आप जिस आत्मा के संग से समस्त व्यवहारों को अच्छे प्रकार सिद्ध करते हैं उसका चिन्तन छोड़ कर तुच्छ विषयों में आप की आसक्ति क्यों है। क्या आप सुषुप्ति को प्राप्त नहीं होते, तथा सुषुप्ति को प्राप्त हो कर क्या परमानन्द को अनुभव नहीं करते! आपकी चेष्टा संसार क्लेश का हेतु क्यों हो रही है? हे पिता! आप का काम आदि धर्म वाला मन जिस सदा प्रकाशमान ज्योति की कृपा से अभिलषित विषयों को प्राप्त करता है उस भीतर के ज्योति को छोड़ कर बाह्य विषयों की प्राप्ति के लिये बाह्य सूर्य आदि ज्योति की इच्छा आप क्यों करते हैं? यदि आपको ऐसी शंका होती हो कि यह बालक हो कर अपने आपको पण्डित मान रहा है तो सुनो:-पशु और परमहंस यह देह की संज्ञा है आत्मा की नहीं उन दोनों के आत्मा में क्या भेद है। जो अविवेक और विवेक, पशु और परमहंस में भेद करने वाले हैं दोनों मन के परिणाम होने के कारण चित्त से प्रकाशित हैं चिदात्म रूप नहीं हैं। इसलिये चिदात्मा सब भूतों में सम है। छोटा पन तथा बड़ा पन मन आदि के धर्म हैं, किन्तु भ्रम से आत्मा में प्रतीत होते हैं। हे पिता काम और मोह से युक्त मन का शोधन करो यदि इस विषय में उपेक्षा करोगे तो ईश्वर की उपासना भी कैसे करोगे? सूर्य से प्रकाशित नील पीत आदि रूपों के साथ सूर्य का सम्बन्ध नहीं है ऐसे ही शोक मोह आदि धर्मों के साथ तुझ साक्षी का भी सम्बन्ध नहीं है। शोक मोह मन के, जरा मृत्यु शरीर के और भूख प्यास प्राण के धर्म हैं, आप तो शुद्ध तेज स्वरूप हैं। चोर चोरी के कारण कारावास की पीड़ा को भोगता है ऐसे ही दूसरों की उर्मियों को अपने में मान कर चिदात्मा जन्मादि दुःखों को पाता है। अतः स्वयं प्रकाशमान हो कर आदित्य आदि अन्य तेजों का प्रकाशक वही अविनाशी आत्मा वास्तविक नेत्र है और मनुष्य इसी नेत्र के कारण ही नेत्र वाला है। "पूर्व जन्म के अनन्त पापों के कारण मेरा यह पुत्र अन्धा है"

इस अविद्या को त्याग कर अपनी आत्म रूप आंख को निर्मल करो। सर्व वस्तुओं का प्रकाशक आत्मा ही मुख्य नेत्र है और चित्त उसकी मलिनता का कारण है। अतः उस चित्त को विमल करो। पुरुष जिससे रूप को देखता है, शब्दों को सुनता है, गन्ध और स्पर्श को ग्रहण करता है और रसों को जानता है वही आत्मा है। जो शोक, मोह, भूख, प्यास, जरा, मृत्यु से रहित है श्रुति प्रमाण से वही आत्मा है।

हे चित्त वृत्ति! इस प्रकार पुत्र से उपदिष्ट वह द्विज श्रेष्ठ आत्म चिन्तन करके मुक्ति को प्राप्त हो गया। मुझ से उपदेश की गई इस उत्तम कथा का विचार करती हुई तू विषयों की कामना को सर्वथा त्यागदे।

अपूर्ण

गोपाल की झांकी।

(ले० दीवान श्री बलदेव प्रसाद जी मिश्र एम० ए०)

जैसी छवि ऐसी नाहिं अवनि गगन माहिं,
अरुन उषा की न निसान नभ लाल की।
सीतल समीर की प्रभात फूल भीर की,
उदधि गिरि सरिवर विपिन विसाल की॥
सकल विलोकी उपमा की है न बाकी वस्तु,
फीकी सब भांति कान्ति जगत रसाल की।
कवि 'राजहंस' जैसी झांकी मैं विलोकी,
काम कोटि कमनीय नन्दनन्दन गुपाल की॥

गोपियों का अनन्य श्रीकृष्ण प्रेम

(ले० श्री० विश्व मूर्ति)

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है:-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्॥

अनन्य भाव से जो मेरा निरन्तर चिन्तन करते हैं, मेरी एकान्त उपासना करते हैं, उन नित्य योग-युक्त पुरुषों के योग और क्षेम का मैं स्वयं ही धारण करता हूं। उनके साधन और साध्य दोनों ही की मैं रक्षा करता हूं, उनका सारा उत्तर-दायित्व मैं अपने उपर ले लेता हूं, पर वह उपासना अनन्य भाव से होनी चाहिये।

यह अनन्यता कैसी वस्तु है जिस पर स्वयं विश्व-विमोहन भी मोहित हैं। जिस अनन्यता हेतु भगवान् का ऐसा विश्वास है यह वह अनन्यता है जिसमें अपने प्रियतम के अतिरिक्त किसी अन्य का स्वप्न में भी ध्यान न हो।

कानन दूसरो नाम सुनै नहीं,
एकही रंग रंग्यो वह गोरो।
भोखेहुं दूसरो नाम कढ़ै,
रसना मुख बांधि हलाहल बोरो॥
'ठाकुर' चित्त की वृत्ति यही,
हम कैसेहुं टेक तजै नहीं भोरो।
बावरी वे अंखियां जरि जायं,
जे सांवरो छांड़ि निहारतीं गोरो॥

जिनकी ऐसी धारणा हो गयी है, जो अपने को उस एक ही पर बलिदान कर देना चाहता है, वही अनन्य प्रेमी है। वह दूसरे का नाम लेना पाप समझता है। कदाचित् वह ऐसा कर बैठता है तो

प्रायश्चित करता है। वह प्रायश्चित भी कैसा कि विष पान, और तब वह छुटकारा पाता है।

जब कृष्ण गोपियों से हट कर दूर चले गये तब उन लोगों का प्रेम रूपी विरह सर्प फूट पड़ा। वे सब व्याकुल हो गयीं। पपीहा के समान अहर्निश कृष्ण नाम की धुन लगा दी। वस खाना, पीना सभी नदारत। कुछ भी उन्हें अच्छी नहीं लगता है। केवल कृष्ण दर्शन ही की चित्त में चाह है। वे सब प्रेम विभोर हो किस प्रकार मद-मस्त हो लता, वृक्ष, कुञ्जादि से पूछती चलती हैं:-

विरहाकुल है गईं सबै पूछति बेली बन।
को जड़ को चैतन्य न कछु जानत विरही जन॥
हे मालति! हे जाति! जूथ के! सुनि हित दैखिन।
मान-हरन, मन-हरन लाल गिरिधरन लखे इत?
हे चंदन दुख-दंदन, सब की जरनि जुड़ावहु।
मंद-मंदन जगवंदन, चंदन हमहिं बतावहु॥
पूछेरी! इन लतनि, फूलि रहिं फूलिनि जोई।
सुन्दर पिय के पास बिना अस फूल न होई॥
हे सखि! ये मृग-बधू, इन्हैं किन पूछहु अनुसरे।
उहउहे इनके नैन अबहिं कछु देखे हैं हरि॥
हे अशोक! हरिशोकलोक मनि पियहि बतावहु।
अहो पनस! सुभ सरस मरतलिय अमिय पियावहु॥
हे जमुना! सब जानि-बूझि तुम हठहि गहति हौ।
जो जल जग-उद्धार लाहि तुम पगटि बहति हौ॥
हे भवनो! नवनीत-चोर चित्त-चोर हमारे।
राखे कितहुं दुराय बता देउ प्रान पियारे॥

नन्ददास

ये व्रज बालायें क्यों लताओं, वृक्षों, पुष्पों पत्तियों से पूछती चलती हैं। इन्हें अपने प्रियतम श्याम सुन्दर बिना चैन नहीं है। ये शायद समझती हैं कि इन्हीं वन वृक्षों ने मेरे नैनतारे प्राण प्यारे परमेश्वर नन्दनन्दन को छिपा लिया है। इसी कारण तो ये सब लहलहा रही हैं। ज्यों २ इन सब अरण्य स्थित लताओं, पुष्पों की प्रसन्नता देखती हैं, त्यों त्यों कृष्ण-विरह बढ़ता जाता है। गोपियां कृष्ण चिन्ह हो लताओं को कृष्ण जान विलाप करने लगती हैं। पुनश्च होश में आने पर अग्रसर होती हैं और पुष्पों की उदासीनता को देख कर विरह व्यथा से पीड़ित हो भेद-भाव भूल जाती हैं। गोपियां अपने प्रियतम की खोज में अस्त व्यस्त हो रही हैं। वे प्राण-हीना सरीखा बन गयी हैं। उन्हें पता नहीं कि वे जड़ हैं या चैतन्य। काले २ पर्वत मालाओं को अवलोक घनश्याम की प्राप्ति का विश्वास हो उठता है और उनका आलिङ्गन करने के लिये दौड़ पड़ती हैं। पहाड़ी श्रेणियों से लिपट जाती हैं और हे कृष्ण हे माधव!! हे मधु सूदन!!! आप हम लोगों को त्याग कहाँ चले गये थे। आपने हम लोगों की सुधि तक न ली। आप अवश्य कठोर मनुष्य हैं। न जाने आप का पत्थर से भी बढ़कर कठोर कलेजा है। परन्तु कृष्ण को उस स्थान पर नहीं पाकर शोक समुद्र में डूब जाती हैं और बन बन भटकने लगती हैं।

व्रज-बालायें घर लौट आती हैं। अहर्निशि कृष्ण-चिन्तन ही में व्यतीत होता है। स्वाती बून्द के सदृश्य कृष्ण प्यारे पर ही पपीहा की भाँति आशा उल्लास भरे गोपियाँ अपने वियोग काल को व्यतीत करती हैं। जिस प्रकार वर्षा ऋतु भी बर्षाती है परन्तु पपीहा इतना दुख पाने पर भी स्वाती-बून्द की प्रतीक्षा करता रहता है उसी प्रकार वे कृष्ण द्वारा छोड़ दिये जाने पर भी साठ घड़ी कृष्ण-विरह व्यथा ही में बीतती है। सब अपने २ गृहों में काम धाम कर रही हैं परन्तु ध्यान उसी बंशीधरेश्वर श्रीकृष्ण पर लगा है। गौ वन में चरने जाती है परन्तु उसका ध्यान अपने बछरु ही पर

रहता है। गोपिका भी वन में चरती हुई गौके तुल्य अपने प्रियतम पर आशा लगाये रहती हैं। इसी प्रकार विरह-व्यथा से व्यथित हो गोपियां काल यापन कर रही हैं। कृष्ण को व्रज छोड़े कितने दिन समाप्त हो गये फिर भी गोपांगनाओं की सुधि कृष्ण को याद न आयी। परन्तु अहर्निशि चिन्तन का भी कुछ मूल्य होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है:-

राम राम जपते रहो जब लगि घट में प्रान।
कबहुं तो दीन दयाल की भनक पड़ेगी कान॥

भगवान् कृष्ण का सिंहासन हिल गया। गोपियों का स्मरण हो आया। अब किस भांति उनके कुशलादि जाने जायं। कृष्ण ने गोपियों से मिलने ही का निश्चय किया परन्तु आज्ञा नहीं मिली। वे प्रेम के कारण बेबश हैं।

कृष्ण की चिन्ता अपनी पराकाष्ठा को पहुंच गयी। अब इसके निदान का कोई उपाय नहीं है। भगवान् को उद्धव की याद पड़ गयी। उद्धव को अपने ज्ञान का अभिमान था। घनश्याम ने उद्धव ही को मथुरा भेजना निश्चित किया। उद्धव कृष्ण सन्देशा ले मथुरा में गोपियों को ज्ञानोपदेश देने गये। गोपियों ने देखते ही उद्धव को परिवेष्टित कर लिया। उद्धव ने कहा कि आप लोगों को भगवान् का भजन, ध्यान, पूजन करना चाहिये। केवल कृष्ण ही की चाहना ठीक नहीं है। उद्धव को पहले यह मालूम नहीं था कि सब व्रज-ललनायें सन्यासिनी हैं। वे कृष्ण प्रेम में विभोर हो एक हो गयी हैं। उन्होंने अपने को कृष्ण में लय कर दिया है। उद्धव समझते थे कि गोपांगनाओं को लौकिक प्रेम है। वे पारलौकिक प्रेम करना ही नहीं जानतीं। इसलिये तो कृष्ण के लिये इतनी व्याकुल हो रही हैं। कृष्णानुरागिनी गोपिकायें उद्धव से कहती हैं:-

नाहिन रह्यो मन में ठौर।
नन्द नन्दन अछत कैसे आनिये उर और॥
चलत, चितवत, दिवस, जागत, सपन सोवत राति।
हृदय ते वह श्याम-मूरति छिन न इत उत जाति॥
(सूरदास)

वे कहती हैं कि विश्व-विमोहिनि मूर्ति को छोड़ कर कोई दूसरा ध्यान में नहीं आता है। हम तो कृष्ण रस रसिक हैं और कुछ नहीं चाहती हैं।

उद्धव अपने ज्ञानाभिमान में मस्त हैं। गोपियों को सर्वदा योग ही की शिक्षा दिया करते हैं। परन्तु उन्हें तो गोरी कुमार ही पसन्द है। वे नहीं चाहतीं कि दूसरे को भजें। श्री कृष्ण ही उन के जीवन धन हैं। कृष्ण-रूप-रस की मधुरता गोपियों को उद्धव सँदेश फीका मालूम पड़ता है। वे पारीक्षित प्रवर उद्धव से प्रेम विह्वल हो कर कहती हैं:॥

ऊधो मन माने की बात।
दाख छुहारा छोड़ि अमृत फल विषकीरा विष खात॥
ज्यों चकोर को दै कपूर कोउ, तजि कि अंगार अघात।
मधुप करत घर कोरि काठ में बंधत कमल के पात॥
ज्यों पतंग हित जानि आपनो दीपक सों लपटात।
'सूरदास' जाकी मन जासों, सोई ताहि सुहात॥

विष कीड़े को विष ही रुचिकर प्रतीत होता है। वह मूर्ख अमृत-जैसे मीठे फलों को छोड़ कर विष खाता है। चकोर को कितना ही कपूर चुगने को दो, पर क्या वह अंगारों को छोड़ कर तुम्हारे कपूर से कभी तृप्त होगा? अब पद्म प्रेमी भ्रमर को लो। जो कठोर काठ को भी कुरेद-कुरेद कर उसमें घर बना लेता है। वही कमल के कोमल कोश के भीतर सहज ही बंध जाता है। पतंग के समान अन्धा और कौन होगा। वह मूढ़ सर्वदा

नष्ट कर देने वाले दीपक को प्रेमालिंगन देने के अर्थ अधीर हो दौड़ता है। इन दग्ध मूर्ख प्रेमियों को क्या कहीं और सुयोग्य प्रेम-पात्र नहीं मिलते? मिला करें, पर उन्हें उनसे क्या प्रयोजन है। उनकी लगन तो उन्हीं से लग रही है। जिसका मन जिस में लग जाता है, उसे वही सुहाता है। ये भी मतवे के प्रेमी होते हैं। वास्तव में वे ही प्रेम करना जानते हैं। यह प्रेम का परम पवित्र दृष्टान्त है।

उद्धव को भान मात्र लुप्त हो गया कि गोपियां साधारण महिलायें नहीं हैं। वे तो अब हक्का बक्का से हो गये। अब तो उन्होंने उलटे गोपियों का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। परन्तु उन्हें फिर भी यह शंका उपस्थित हो गई कि शायद मैं ही तो पागल नहीं हो गया हूं। कृष्ण संसार के रचयिता हैं। उन्हें इन गोपियों से क्या प्रयोजन है। उनके लिये तो घर और अघर एक समान है। उद्धव ने अपने को सम्हाला। अपने शुष्क वेदान्त की पुनः झड़ी लगादी। शुष्क वेदान्त और वास्तविक तत्व-ज्ञान में आकाश पाताल का अन्तर है। गोपियों ने कहा कि हे उद्धव! हमें शुष्क-वेदान्त की अग्नि से क्यों दग्ध करते हो। हम केवल चाहती हैं नटनागर गिरिधर को। तुम्हारा योग ज्ञान व्यर्थ है।

ब्रज बालाओं ने कहा:-

ऊधो! योग योग हम नाहीं।

अबला सार ज्ञान कहा जानै, कैसे ध्यान धराहीं ॥१॥
ये अति मूंदन नैन कहत हैं, हरि मूरति जा मांहि।
ऐसी कथा कपट की मधुकर, हमसे सुनि न जाहीं ॥२॥
श्रवण चीर अरु जटा बंधावहु ये दुख कौन समाहीं।
चन्दन तजि अंग भस्म बतावत विरह अनल अति दाहीं ॥
जोगी भरत जेहि भगि भूले सो भुज मांहि।
'सूरदास' ते न्यारे न पल छिन, क्यों घट ते परिछाहि ॥

ब्रजवासी गोपों की स्त्रियों ने कहा कि हे उद्धव! कृष्ण के लिये हम लोगों का चित्त व्याकुल हो उठा है। अब उसका वियोग क्षण मात्र के लिये भी सह्य नहीं है। आज कृष्ण विरह के दावानल से हृदय दग्ध हो गया है। प्राणों से भी बढ़ कर उस प्यारे श्याम सुन्दर के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुहाता है। माधव को भी हमारा क्षण भर का वियोग सहन नहीं होना चाहिये। हम लोगों का यह अन्तिम सन्देशा है।

स्यामतन, स्याममन, स्याम है हमारो धन,
आठों याम ऊधो हमें स्याम ही सों काम है।
स्याम हिये, स्याम जिये, स्याम बिनु नांहि तिये,
आंधे की सी लाकरी अधार स्याम नाम है॥
स्यामगति, स्याममति, स्याम ही है प्राणपति,
स्याम सुखदाई सों भुलाई सोना धाम है।
ऊधो तुम भये बौरे, पाती लेके आये दौरे,
योग कहां राखें, यहां रोम रोम स्याम है॥

अरे, यहां तो श्याम के अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं, सारा हृदय तो उसने ही भरा है। वह तो रोम-रोम में व्याप्त है। सोते-बैठते कभी भी ध्यान नहीं उतरता है। और फिर बताओ तुम्हारे ज्ञान और योग को रक्खें कहां? इसी कारण तो कविवर रसखानि जी बोल उठे:-

अदपि असोदा नन्द अरु ग्वाल बाल सब धन्य।
पै वा जग में प्रेम की गोपी भई अनन्य॥

शरणागति

(ले० शर्म्मा श्री भारद्वाज 'साहित्य रत्न')

इस विधि विरचित विस्तृत विश्व बीच 'मोक्ष' ही परम पुरुषार्थ माना गया है। 'मोक्ष' प्राप्ति के लिये कई साधनों का वर्णन किया गया है। ये सब साधन दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं:- एक तो 'नियताधिकार, दूसरा सर्वाधिकार'। इन दोनों में 'सर्वाधिकार' साधन ही सर्व श्रेष्ठ है। इसमें जाति पाँति की कुछ अड़चन नहीं। इस साधन-सम्भव सिद्धि का वही अधिकारी हो सकता है जिसके हृदय में भेद-भाव वेलि लहलहा रही हो। इस साधनान्तर्गत 'शरणागति' का सब से ऊंचा स्थान है। अपनी आत्मा के लिये कहीं से भी परित्राण न पाकर जीवन के द्वारा विश्वास पूर्वक परमेश्वर से 'आपही मेरी शरण हैं' इस प्रकार की गई प्रार्थना का नाम 'शरणागति' है। कहा भी है:-

प्रपत्ति न्यासं इतिच प्रथि तस्तस्य तज्ञयः।
मार्ग साधारण सोयम् गीताचार्येण दर्शितः॥
अनन्ये साध्ये स्वामिष्ट महा विश्वास पूर्वकम्।
तदेको पाय तयाच्च प्रपत्ति शरणागतिः॥

परन्तु केवल उपायत्व की भीख मांगने से ही 'शरणागति' की इति श्री नहीं हो जाती वरन् उपायत्व पूर्वक भरन्यास की भी अपेक्षा रहती है। मैं शक्ति शाली हूं इसलिये अमुक कार्य को सिद्ध कर सकता हूं। इस प्रकार स्वतन्त्रा जनित अभिमान को त्याग कर जो अपने अकिञ्चिन्य आदि का अनुसन्धान करके 'त्वमे उपाय भूतो मे भव' इत्यादि प्रार्थना पूर्वक 'तदहं तव पाद पद्मयोरह मद्यैव मया समर्पिता' की रीति से अपने आपको भगवान् के हाथों में देना है उसी का नाम 'भरन्यास' है। भरन्यास सहित शरणागति-पथ-पथिक के ६ कर्तव्य हैं:- १ अनुकूलता का संकल्प, २ प्रतिकूलता का वर्जन, ३ विश्वास, ४ त्वमेवोपाय भूतो मेभव, ५ आत्म निक्षेप, ६ कृपणता जिसे अपना उपायत्वेन आश्रय समझा है उससे अनुकूल चलने के संकल्प को 'अनुकूलता का संकल्प' कहते हैं। अर्थात् अपने स्वामी के अनुकूल आचरण करना शरणागत का पहिला कर्तव्य है। क्योंकि अशरण को सिवा अपनी शरण के कौन अनुकूल मिल सकता है; जिसकी वह शरण तके।

जिसकी शरण तके उसकी आज्ञा रूप शास्त्रों में कथित निषेध कृत्यों से बचना और विहितों में यथा योग्य कैंकर्य भाव से युक्त होना चाहिये अन्यथा शरणागति का नियम भंग हो जाता है। शरणागत को विश्वास होना चाहिये कि मेरा स्वामी दयालु और बड़ा उदार है। वह मेरी अवश्य मेव रक्षा करेगा।

शरणागत का कर्तव्य है कि वह सर्वदा भगवान् से याचना करता रहे कि 'तुम मेरे रक्षक बनो।'

अपने आप को भगवान् के चरणों के सहारे छोड़ देने को 'आत्म निक्षेप' कहते हैं। शरणागत को सर्वदा अपने स्वामी के प्रति दीन भाव रखना चाहिये। जब तक शरणागत का उपायान्तरों से सम्बन्ध रहेगा तब तक उसकी उपासिद्धि नहीं हो सकती। क्योंकि यह मार्ग अकिञ्चनों का ही है। इस संसार में मानव जीवन किन्हीं सुकर्मों से प्राप्त होता है। तिस पर भी:-

आप मनहि पुरुषं वं पश्येन्मधु सूदनः।
सात्विकः सतु विज्ञेयः सर्व मोक्षार्थ चिन्तकः॥

इस उक्त रीति से मनुष्य भगवान् की कृपा

कटाक्ष पाकर परम पुरुषार्थ में रुचि लाभ करता है। शास्त्रों में कहे गये कर्मयोग, ज्ञान योग आदि के लिये अपने आपको अशक्त समझ कर स्वाभाविक शेषत्व कैंकर्य के अनुगुण शरणागति मार्ग में मात्र विशेष से पथिक बन कर सदा अपने स्वामी की आज्ञा में चलने की दृढ़ प्रतिज्ञा से अनुकूल संकल्प में प्रवृत्त हो अपने स्वामी सर्व शक्तिमान् वात्सल्यादि सकल कल्याण गुणों से पूर्ण श्री परम पुरुष रघुनन्दन की शरणागत हो प्रारब्ध आदि सब कर्म-समूह के क्षीण होने पर शरीर के पात मात्र की प्रतीक्षा करता हुआ उस शरीर के पात होने के पश्चात् परम पुरुष भगवान का प्राप्त हो कर उनके अविच्छिन्न कैंकर्य साम्राज्य रूप मुक्ति श्री का अनुभव करता है। तात्पर्य यह है कि मोक्ष रूप सिद्धि प्राप्त करने के लिये शरणागति ही सर्वोत्तम साधन है।

कतिपय सज्जनों का मत है कि यह जीव चिरकाल से पाप-पुण्य का सञ्चय करता रहा है, फिर शास्त्रोक्त कर्मयोगादि उपायों को न करके केवल शरणागति से किस प्रकार संसार-सिन्धु तर सकता है। अब मैं इसी पर विचार करूंगा। पहले तो यह देखना है कि शास्त्रोक्त उपाय के फल का साधन क्या है। शास्त्रीय उपाय किस प्रकार फल दे सकते हैं? किसी सामर्थ्यवान् के बिना शास्त्र स्वयमेव फल नहीं दे सकते वे जड़ हैं, अस्तु फल देने का सामर्थ्य उनमें कहा? शास्त्रों को भी फल देने के लिये किसी सामर्थ्यवान् की अपेक्षा रहती है।

यहां पर किये हुए उपाय किसी अपूर्व को उत्पन्न करके उसी के द्वारा पर लौकिक फल को सिद्ध करते हैं।" यह जो कबन्ध मीमांसकों का मत है वह वेदान्तियों को अभीमत नहीं है। उनका सिद्धान्त है कि सब को परम पुरुष की प्रसन्नता के द्वारा ही अभिमत फल की प्राप्ति होती है। इसी को 'फल मत उपपत्ते' कह कर भगवान् सूत्रकार ने भी समर्थन किया है। इससे सिद्ध होता है कि पाप पुण्य कोई अपूर्व नहीं है। किन्तु इस अपराधी को नीचे गिराऊं इस प्रकार भगवान् का एक सङ्कल्प विशेष है। इसी प्रकार कर्मयोगादि की भी भगवान् के प्रसाद सम्पादन में ही उपयोगिता है। मुख्य उपायता तो स्वयं भगवान् में विद्यमान है। अस्तु वही उपाय भूत उन २ कर्म योगादि के द्वारा प्रसन्नता के उपायों से प्रसन्न होकर फल देता है। संसार के सम्पादक का संकल्प न करना ही पुण्य-पापों का अपगमक हो जाता है।

जब मुमुक्षु पुरुष मुक्ति साधनत्वेन भगवान् की आज्ञा का अनुष्ठान करता है तब भगवान् मोक्ष का ही संकल्प करते हैं अन्य का नहीं। इसी को पाप पुण्य की निवृत्ति कहते हैं,

जब करुणानिधि भगवान् श्रीनिधि, अकिंचन और केवल शरणागत को प्रसन्न हो कर अपना पद देने की कृपा करें उस समय किसकी ताव है जो उन्हें रोके। इसलिये इस सिद्धोपाय शरणागति में किसी को भी आशंका का अवकाश नहीं रह जाता।

'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।'

इस गीता वचन से शरणागति की माया सन्तरणोपाय उक्त होती है। अच्छा इसकी उत्पत्ति किस प्रकार है? सुनिये कर्म योगादिक उपायों की परम्परागत सम्पादकता से उसका उपयोग होता है ऐसा जो वहाँ पर कहा है-तो ठीक है, सत्य है और जो ईश्वर की प्रसन्नता के द्वारा मानोगे तो हम भली प्रकार उसके मानने को तैयार हैं। इस प्रकार यदि भगवान् प्रसन्न होते हैं

तो सर्वथा अशक उपायान्तरों से रहित संसार दावाग्नि से डरते हुए आत्मैक शरण पर क्यों नहीं प्रसन्न होते और क्यों नहीं उन्हें अपना पद दे देते? क्या वह असमर्थ है? क्या वह सर्वज्ञ नहीं है? क्या वह वत्सल नहीं है?

जो व्यवहार मात्र के लिये सकल कल्याण गुण ईश्वर को स्वीकार कर वास्तव में उसकी परवाह न करके निर्विशेष शक्ति मात्र पर चलते हैं उनको मोक्ष साधनता शरणागति में दुर्लभ है। सर्वज्ञ, सकल गुण-सागर, परब्रह्म परमेश्वर के मानने वालों को उनकी शरणागति से क्या दुर्लभ है। स्वयं भगवान् ने इस सर्वोत्तम मुक्ति मार्ग को प्रकाशित किया है:-

शरणं त्वां प्रपन्ना ये ध्यान योग विवर्जिता।
तेऽतिमृत्युमतिक्रम्य यान्ति तद्दैष्टावम्पदम् ॥

श्रुतियों में भी यही कहा है:-

'यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं योवै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्म बुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहम्प्रपद्ये ॥

हरि नाम की महिमा

(ले० श्री महात्मा राम)

'जहंमात पिता सुत मीत न भाई,
मन उहां नाम तेरे संग सहाई।

जब देह त्याग कर यह जीव परलोक में जाता है तब वहां माता पिता, पुत्र, मित्र और भाई कोई भी साथी नहीं होते हैं और महा भयानक रास्ता है वहां पर हे मनी राम! यदि तुमने हरि के नाम का सुमिरन किया होगा तो वह तुम्हारी सहायता करेगा। जब यमराज के पास ले जाते हुए यमदूतों से तुम को अतिभय लगेगा और अति कष्ट होगा तब केवल भगवान का नाम ही तेरे साथ जायेगा और तेरी सहायता करेगा। उस मार्ग में जहां कहीं तुझे अति कठिनता बनेगी तब तेरा सुमिरन किया हरि का नाम तेरी रक्षा करेगा। अनेक प्रकार के कर्म और पुरश्चरण करने से भी जब तेरी गति नहीं होगी तब हरि का नाम तुझे अनेक पापों से पार करेगा इसलिये गुरुमुख हो कर हरि का नाम जपो। सारी सृष्टि का राजा हो कर भी जो दुःखी ही रहता है वह भी हरि के नाम से सुखी हो जाता है। चाहे लाखों और करोड़ों बन्धनों से बंधा हो वह भी हरि के नाम से छूट जाता है। अनेक माया के पदार्थों से भी जिसकी तृष्णा न मिटी हो परन्तु हरि का नाम जपने से वह तृप्त हो जाता है।

इस परलोक के मार्ग में यह जीव अकेला ही जाता है वहां हरि का नाम सुगमता से ले जाने वाला साथी होता है। इसलिये हे मन! तू ऐसे नाम का सदा जप कर जिससे तू परमगति को प्राप्त हो। हजारों करोड़ों पापों से लिप्त होने के कारण यह जीव बन्धन से नहीं छूटता है वह भी यदि भगवान् के नाम का जप करे तो सब बन्धनों को तोड़ कर पार हो जाता है। जब इस जीव को अनेक प्रकार के विघ्न आकर घेर लेते हैं तब हरि का नाम तत्काल ही उसका उद्धार कर देता है। अपने जीव जन्तुओं की योनियों में यह जीव जन्म लेता है और मरता है इसी प्रकार जन्म मरण के चक्कर में पड़ा रहता है जब हरि का नाम याद आता है तब यह विश्राम को पाता है। अहंकार रूप मल से मलीन मन को हरि का नाम ही धो सकता है। करोड़ों पापों का नाश करता है। ऐसे हरि के नाम को प्रेम पूर्वक हे मन! तू जप यह नाम तुझे सन्तों के संग से ही मिल सका

है। जिस मार्ग के कंकड़ भी नहीं गिने जा सकते हैं उस मार्ग में हरि का नाम तेरे लिये तोषा यानि रास्ते का कभी न निबटने वाला भोजन है। जिस रास्ते में महा अन्धकार ही अन्धकार छाया हुआ है कुछ नहीं दीखता है। वहां हरि का नाम तेरे लिये उजारा (प्रकाश) करेगा। जहाँ तुझे कोई रास्ता बताने वाला भी न मिलेगा। वहाँ हरि का नाम तुम्हारे साथ होगा और तुमको ठीक रास्ते पर ले आयगा। और जहाँ रास्ते में तुम को महा भयानक धूप की तप्त होवेगी वहां हरि का नाम तुम्हारे ऊपर छाया करेगा। और जब तुमको जल की तृषा अति सतावेगी तब हरि के नाम का तुम्हारे ऊपर अमृत बर्षेगा। जो भगवान् के प्यारे भक्त जन हैं वह तो सदा नाम का ही भजन कीर्तन करते हैं। सन्तों के हृदय में भगवान् का नाम सदा विश्राम करता है। हरिका भक्त हरि नाम को अपनी ओट (सहारा) करके जानता है हरि के नाम कीर्तन से कोटि जनों का उद्धार होता है। सन्त जन दिन रात हरि नाम का कीर्तन करते हैं हरि नाम ही उनकी परम औषधी है हरिजनों को हरि का नाम ही परम धन है। हरिजन जो हरिनाम का सुमरन करते हैं। उस नाम को वह हरि का दिया हुआ प्रसाद मानते हैं। मन से और तन से एक हरि के रंग में ही रंगे रहते हैं यही उनका विवेक है और यही वैराग्य है। हरिका नाम ही उनकी मुक्ति है और हरि का नाम ही उनकी युक्ति है। हरि के नाम में ही सदा तृप्त रहते हैं और हरि के नाम का ही हरिजन आहार करते हैं। हरि का नाम ही जिनका रूप और रंग है ऐसे हरि के नाम जपते हुए उनके लिये कभी किसी प्रकार भंग अर्थात् विघ्न नहीं पड़ता है। हरि के नाम को ही अपनी बड़ाई मानते हैं। हरि के नाम से ही हरिजन अपनी शोभा को प्राप्त होते हैं। हरि का नाम ही हरिजनों का योग, क्या भोग रूप है। हरि नाम को जपते हुए वह आप को हरि से अलग नहीं समझते हैं हरिजन सदा हरि नाम के प्रेम में ही मगन रहता है और सदा हरि भगवान् का ही पूजन करता है। हरि का नाम ही हरिजनों का माल और खजाना है। हरि नाम का धन हरिजनों को आप ही हरि ने दिया है। हरि का नाम ही हरि की ओट (मान) रखने वाला है हरि के प्रताप से वह सिवाय हरि के और किसी को कुछ नहीं जानते हैं। हरि जन हरि में और हरि हरिजनों में ओतप्रोत हो कर हरि के आनन्द रूप रस में हरि जन सदा मस्त रहते हैं।

निर्विकल्प समाधि में नाम के रस का अनुभव करते हैं जानो आठों पहर हरि हरि ही रटते हैं। हरि का भक्त कभी गुप्त नहीं रहता वह सदा प्रकट रहता है। हरि की भक्ति किस को मुक्त नहीं करती है, हरि जनों के संग से कितने ही तर जाते हैं। यह हरि का नाम पारिजात के समान है। हरि की कथा सब कर्मों से उत्तम कर्म है। हरिनाम के सुनते ही सब दुःख और दरद दूर भाग जाते हैं। हरि के नाम की जो महिमा है वह सन्तों के हृदय में निवास करती है।

सन्तों के प्रताप से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। बड़े भाग्य से सन्तों का सत्संग होता है। सन्तों की सेवा से हरि के नाम में प्रीती बढ़ती है हरि नाम के समान और कुछ नहीं है। गुरु कृपा से ही हरि का नाम मिलता है अनेक शास्त्र और अनेक स्मृति सब अच्छी तरह टटोल कर देख लिये सब का सार हरिका नाम ही है इसलिये हरि के नाम का ही भजन और पूजन करना चाहिये।

गज़ल

(रचयिता श्री शिवराम शर्मा ब्रह्मचारी)

हिन्द में फिर से कभी बांसरी वाले आजा।
अपने भक्तों के नशा दुःख निराले आजा॥
कृष्ण बिन तेरे हुई हिन्द की है यह हालत।
अब बनाने को इसे बांसरी वाले आजा॥
भूल बैठे हैं तेरी गीता को हिन्दी सारे।
अब सुनाने के लिये कृष्ण पियारे आजा॥
दिखलाई है यहां पाप की वृद्धि मोहन।
इसको अब नाश से अब कृष्ण बचाले आजा॥
छोड़कर हमको तुम्हीं बैठ गये हो मोहन।
फिर हमें कौन जमाने में समाले आजा॥
ग्वाल और बाल के सदृश हैं यह ब्रजमंडल के।
अपनी मुरली से इन्हें फिर तू बुलाले आजा॥
याद 'शिव' को है बनी तेरी सीता है कहां।
आसरे आपके हैं अबतो बचाले आजा॥

भजन

अब की राख लेहु भगवान्॥ टेक॥
खंभ सों मोहि बान्ध दीनों कछू लीनो तान॥
करके यत्न अनेक हारो रही एक न आन॥
अब तो कठिन कृपान तानें लियो चाहत प्रान॥
मोहि वेग उबार लीजे सुनिये कृपा निधान॥
युगल चरण सनेह चाहत धरत तेरो ध्यान॥

२

हे माता मन शोच न कीजै,
राम नाम पद भारी है॥
जहं जहं भीर परी भक्तन पर,
तहं तहं आय सिधारी है॥
घट घट में जल थल में व्यापक,
हरि की लीला न्यारी॥
युगलदास प्रभु के चरणन पर,
बार बार बलिहारी है॥

(३)

राम प्रताप न जाने पिता तू राज पाय बौराने॥टेक
जाकी कृपा भई जग विजई, तासों बैर सो ठाने॥
देखो नैन रैन कर सुपना, सब तज भज भगवाने॥
रोम रोम रम रह्यो रमापति, वेद पुराण बखाने॥
निश दिन अज हर ध्यान धरत है, तू कैसे रिस माने
सह नहीं सकते त्रास भक्तन के, भक्तन हाथ बिकाने।
सब कल्याण ज्ञान कर देखो, युगल चरण लपटाने॥

(४)

राम नाम इक सार और सब झूंठा है संसार॥टेक
राम को नाम अमीरस भाजन,
सो तं हि अधिक पियारा॥
भाई बन्धु अरु लोक कुटुम्ब सब,
मात पिता सुत दारा॥
अन्त समय कोई काम न आवे,
देखो दृष्टि पसारा॥
यह देही सुमिरन का दीनी,
मिलत न बारम्बारा॥
ताको पाय वृथा क्यों खोवत,
भजन न एको बारा॥
जगत् सिंधु में आन फंस्यो है,
उठत भंवर भ्रम भारा॥
युगल चरण की नौका कीजे,
उतर जाय भव पारा॥

REG DNo. ,L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	=)।
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	=)॥
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,,	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	=)॥
११.	शब्द सार संग्रह	,,	=)।
१२.	शब्दसंग्रह	,,	=)॥
१३.	सारसंग्रह	,,	)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,,	≡)
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=)
१७.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१८.	भगवदंक	,,	॥)
१९.	गवांक	,,	१)
२०.	महात्मांक	,,	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।